|| श्री आदिनाथाय नमः ||

करणानुयोग दीपक

प्रथम भाग

- लेखक -

पं. (डा.) पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल

अतिशय क्षेत्र, पिसनहारी की मढ़िया, जबलपुर (म. प्र.)

सौजन्य से

श्रीमती विमला जैन

धर्मपत्नी श्री पारसमल जी पाटनी

द्वारा : मेसर्स राज इन्वेस्टमेंट्स

बी-6, द्वितीय तल, स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता

फोन : 2433893, 2432934, 2433995

निवास : 3377542, 2349032

- प्रकाशक -

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा

(प्रकाशन विभाग)

केन्द्रीय कार्यालयः श्री नन्दीश्वर फ्लोर मिल्स, मिल रोड, ऐशबाग

लखनऊ - 226 004 (उ० प्र०) फोन/फैक्सः (0522) 267287, 654489

E mail: mahasabha@yahoo.com

भावना

आचार्य समन्तभद्र ने जैनागम को चार भागों में विभक्त किया है। यथा- प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग और द्रव्यानुयोग। इनमें तीन अनुयोगों की अपेक्षा करणानुयोग का विषय जटिल है; जिससे किसी के सहज ग्राह्य नहीं है। करुणाबुद्धि से प्रेरित होकर ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध और अनुभववृद्ध विद्वद्वर्य पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने जीवकाण्ड के आधार से करणानुयोग दीपक का प्रथम भाग, कर्मकाण्ड के आधार से दूसरा भाग और त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ती एवं राजवार्तिक के आधार से तीसरा भाग लिखा था; जिनका प्रकाशन क्रमशः सन् १९८५, १९८७ और १९९० में श्री भारतवर्षीय दि. जैन महासभा से हुआ है। प्रथम भाग की प्रतियाँ समाप्त हो चुकी हैं। गत वर्ष संघ में आवश्यकता पड़ी थी जिसकी पूर्ति जीरोक्स कॉपियाँ निकलवा कर करनी पड़ी, अतः इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित करने की योजना बनी।

संघस्था आर्यिका प्रशान्तमती जी ने इस संस्करण में जीवकाण्ड के आधार से ही कुछ संशोधन कर और कुछ प्रश्नोत्तर परिवर्धित कर प्रेस कॉपी तैयार की। वे इसी प्रकार कार्य-रत रहकर अपने उपलब्ध क्षयोपशम की वृद्धि करें, यही भावना है।

श्री पण्डित जी सा. ने अत्यन्त कठिन प्रमेयों को संक्षिप्त

और सरल करके आज के भोगासक्त मानव-मस्तिष्क को जो सुगम साहित्य दिया है, वह अतिस्तुत्य कार्य है। इतनी वृद्धावस्था में भी आप अनवरत माँ सरस्वती की सेवा में संलग्न रहते हैं, यह बात प्रत्येक आत्महितैषी के लिए अनुकरणीय है। मेरी भावना थी कि पण्डित जी सा. चारित्र में आगे बढ़ते, शारीरिक परिस्थितिवश ऐसा नहीं हो सका। अब आपका उपयोग अन्त-पर्यन्त जिनवाणी की सेवा में रत रहे, यही मेरी हार्दिक भावना है।

अध्ययन हेतु ब्र. भावना ने ही इस पुस्तक की जीरोक्स कॉपियाँ करवाई थीं। अतः उनके परिणाम इसे प्रकाशन कराने के हुए हैं। सरस्वती सेवा के उनके परिणाम इसी प्रकार बनते रहें, यही मेरा आशीर्वाद है।

श्रुतपंचमी सं. २०५०
सन् १९९३

– आर्यिका विशुद्धमती

आमुख

जैन वाङ्मय में करणानुयोग की जटिलता सुविदित है। प्रामाणिक ग्रन्थों में औसतबुद्धि पाठक का प्रवेश असंभव ही रहता है। गुणस्थान, मार्गणा और जीवसमास की सम्यक् अवधारणाओं को आत्मसात किये बिना इस दिशा में कथमपि आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। अतः इन गहन विषयों को सरल और सुबोधरूप में (Madc Easy) प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। इस दिशा में प्रयास हुए भी हैं, उनकी उपादेयता से नकारा भी नहीं जा सकता। **करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग** पर प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गई **पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री** की पुस्तकें **वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट, वाराणसी** से प्रकाशित हुई थीं जो अब अप्राप्य हैं। **पं. पन्नालाल** जी द्वारा लिखित **'द्रव्यानुयोग प्रवेशिका'** का एक संस्करण शान्तिवीरनगर से निकला था, वह भी अब उपलब्ध नहीं है। इनसे पूर्व गुरूणां गुरु **श्री गोपालदास जी बरैया** ने **'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका'** प्रश्नोत्तर शैली में लिखी थी, यह बड़ा उपयोगी प्रकाशन था पर आज यह भी सुलभ नहीं है।

श्री भारतवर्षीय दि. जैन महासभा ने इस शैली की पुस्तकों के प्रकाशन का महत्त्व समझकर इस दिशा में कदम रखा, फलस्वरूप करणानुयोग दीपक भाग १, २, ३ का प्रकाशन क्रमशः १९८५, १९८७ और १९९० में हुआ। इन तीनों पुस्तकों के लेखक **पं. पन्नालाल जी जैन साहित्याचार्य** जैन जगत् के विश्रुत विद्वान् हैं। वे अनवरत

अध्ययन-अध्यापन में रत हैं। उनकी अनेकानेक अनूदित और मौलिक कृतियों से प्रत्येक स्वाध्यायी सुपरिचित है। अभी हाल ही उन्होंने **आचार्य वीरनन्दी** के **'आचारसार'** का प्राचीन प्रतियों से पाठ भेद लेकर नवीन सम्पादन-अनुवाद किया है, यह संस्करण शीघ्र ही उपलब्ध होगा।

प्रस्तुत प्रकाशन **करणानुयोग दीपक प्रथम भाग** का नवीन संशोधित परिवर्धित **द्वितीय संस्करण** है। प्रथम संस्करण में १६६ प्रश्नोत्तर थे, इस संस्करण में इनकी संख्या २६२ है। इस संस्करण को सँवार कर इसकी प्रेसकॉपी करने का श्रम पूज्य **आर्यिका १०५ श्री प्रशान्तमती माताजी** ने किया है।

ब्र. भावना ने इसके प्रकाशन हेतु अर्थ-सहयोग प्रदान किया है।

मैं पूज्य **आर्यिका प्रशान्तमती** जी, आदरणीय **पण्डित पन्नालाल** जी और **ब्र. भावना** बहन व **महासभा** के प्रकाशन विभाग के प्रति इस उपयोगी प्रकाशन हेतु हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ तथा श्रुत-साधना के लिए प्रेरणास्रोत **पूज्य आर्यिका विशुद्धमती माताजी** के चरणों में अपना सविनय नमोस्तु निवेदन करता हूँ जिनके आशीर्वाद से मुझसे भी जिनवाणी माता की यत्किंचित सेवा बन जाती है। प्रकाशन में रही भूलों के लिए सविनय क्षमा चाहता हूँ।

आषाढ़ी अष्टान्हिका,
वि. सं. २०५०
जून, १९९३

विनीत
डॉ. चेतन प्रकाश पाटनी
जोधपुर

।। श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः।।

।। श्री शान्ति-वीर-शिव-धर्माजित-वर्धमान- सूरिभ्यो नमो नमः।।

करणानुयोग दीपक

प्रथम भाग

१. **प्रश्न : करणानुयोग किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसमें गुणस्थान, मार्गणा एवं जीव के भावों का लोक-अलोक का तथा कालचक्र आदि का वर्णन होता है उसे करणानुयोग कहते हैं।

२. **प्रश्न : गुणस्थान किसे कहते हैं ?**

उत्तर : मोह और योग के निमित्त से होने वाले आत्म-परिणामों के तारतम्य को गुणस्थान कहते हैं।

३. **प्रश्न : गुणस्थान के कितने भेद हैं ?**

उत्तर : गुणस्थान के चौदह भेद हैं- १. मिथ्यात्व, २. सासादन, ३. मिश्र, ४. अविरत सम्यक्त्व, ५. देशविरत, ६. प्रमत्तविरत, ७. अप्रमत्तविरत, ८. अपूर्वकरण,

९. अनिवृत्तिकरण, १०. सूक्ष्म साम्पराय, ११. उपशान्तमोह, १२. क्षीण-मोह, १३. सयोगकेवली और १४ अयोगकेवली।

४. प्रश्न : मिथ्यात्व गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होने वाले तत्त्वार्थ के अश्रद्धानरूप परिणामों को मिथ्यात्व गुणस्थान कहते हैं। इन परिणामों से युक्त जीवों को मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

५. प्रश्न : मिथ्यादृष्टि के कितने भेद हैं ?

उत्तर : मिथ्यादृष्टि के दो भेद हैं- १. स्वस्थान मिथ्यादृष्टि और २. सातिशय मिथ्यादृष्टि। जो जीव मिथ्यात्व में ही रच-पच रहा है, उसे स्वस्थान मिथ्यादृष्टि कहते हैं। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सम्मुख जीव के जो अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणाम होते हैं, उनसे युक्त जीव को सातिशय मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

६. प्रश्न : सासादन गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : प्रथमोपशम सम्यक्त्व अथवा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के अन्तर्मुहूर्त मात्र काल में से जब जघन्य एकसमय तथा उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल शेष रहे, उतने काल में अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ में से किसी के भी

उदय में आने से सम्यक्त्व की विराधना होने पर सम्यग्दर्शन गुण की जो अव्यक्त अतत्त्व-श्रद्धानरूप परिणति होती है उसे सासादन गुणस्थान कहते हैं। अथवा अनन्तानुबन्धी कषाय में से किसी एक का उदय होने से सम्यक्त्व परिणामों के छूटने पर और मिथ्यात्व प्रकृति के उदय न होने से मिथ्यात्व परिणामों के न होने पर मध्य के काल में जो परिणाम होते हैं, उसे सासादन गुणस्थान कहते हैं।

७. **प्रश्न : अनन्तानुबन्धी के उदय से यदि सम्यक्त्व का नाश होता है तो उसे दर्शनमोहनीय के भेदों में गिनना चाहिए। यदि वह चारित्रमोहनीय का भेद है, तो उससे सम्यक्त्व की विराधना नहीं हो सकती, ऐसी अवस्था में सासादन गुणस्थान कैसे हो सकता है ?**

उत्तर : अनन्तानुबन्धी कषाय चारित्रमोहनीय का भेद है, फिर भी अनन्तानुबन्धी कषाय में सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र दोनों को ही घात करने का स्वभाव है अर्थात् अनन्तानुबन्धी कषाय द्विस्वभाववाली है। यह कषाय सम्यक्त्व का घात करती है और अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों का अनन्त प्रवाह बनाये रखती है, इस प्रकार अनन्तानुबन्धी

कषाय का द्विस्वभावपना सिद्ध होने से सासादन गुणस्थान पृथक् सिद्ध होता है।

८. **प्रश्न : मिश्र गुणस्थान किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जात्यन्तर सर्वघाती सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से केवल सम्यक्त्वरूप या मिथ्यात्वरूप परिणाम न होकर जहाँ मिश्ररूप परिणाम होते हैं, उसे मिश्र गुणस्थान कहते हैं।

जिस प्रकार मिले हुए दही और गुड़ का स्वाद न खट्टा और न मीठा है परन्तु खटमीठा है, उसी प्रकार एक ही काल में इस गुणस्थानवर्ती जीव के सर्वज्ञकथित तत्त्वश्रद्धान की अपेक्षा सम्यक्त्वरूप और सर्वज्ञाभास कथित अतत्त्व-श्रद्धान की अपेक्षा मिथ्यात्वरूप परिणाम पाये जाते हैं।

९. **प्रश्न : मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव की क्या-क्या विशेषताएँ हैं ?**

उत्तर : मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव सकलसंयम या देशसंयम को ग्रहण नहीं करता है। इस गुणस्थान में नवीन आयु का बंध नहीं होता है, मारणान्तिक समुद्घात नहीं होता है और मरण भी नहीं होता है।

१०. प्रश्न : अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जहाँ मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया एवं लोभ, इन सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम से सम्यग्दर्शन तो हो जाता है परन्तु अप्रत्याख्यानावरणादि चारित्रमोह की प्रकृतियों का उदय रहने से पंच पाप के त्यागरूप परिणाम नहीं होते हैं, उसे अविरत सम्यक्त्व कहते हैं। इस गुणस्थानवर्ती जीव इन्द्रियों के विषयों से तथा त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा से विरत नहीं होता है तथापि अन्तरंग में प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य गुण के प्रकट हो जाने से अन्याय, हिंसा आदि पाप-कार्यों में प्रवृत्त नहीं होता है एवं आसक्तिपूर्वक भोग नहीं भोगता है।

११. प्रश्न : चतुर्थ गुणस्थान में श्रद्धान की अपेक्षा क्या विशेषता है ?

उत्तर : सम्यग्दृष्टि जीव आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान करता है किन्तु स्वयं के अज्ञानवश गुरु के उपदेश से विपरीत अर्थ का भी श्रद्धान कर लेता है, तो भी वह सम्यग्दृष्टि ही है।

सूत्र के आश्रय से आचार्यादि के द्वारा आगम दिखाकर समीचीन पदार्थ के समझाने पर भी यदि वह जीव पूर्व में अज्ञान से किये हुए असत्श्रद्धान को न छोड़े तो वह जीव उसी काल से मिथ्यादृष्टि कहा जाता है।

१२. **प्रश्न : देशविरत गुणस्थान किसे कहते हैं ?**

उत्तर : अप्रत्याख्यानावरण कषाय के अनुदय से जहाँ इस जीव के हिंसा आदि पाँच पापों के एकदेश-त्यागरूप परिणाम होते हैं, उसे देशविरत गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में त्रसहिंसा की अपेक्षा विरतरूप भाव और स्थावर हिंसा के त्याग की अपेक्षा अविरत रूप भाव पाये जाते हैं, इसलिये इस गुणस्थान को विरताविरत अथवा संयमासंयम भी कहते हैं।

१३. **प्रश्न : प्रमत्तविरत गुणस्थान किसे कहते हैं ?**

उत्तर : प्रत्याख्यानावरण कषाय के अनुदय से जहाँ सम्पूर्ण संयम तो हो चुका है, किन्तु संज्वलन और नोकषाय का उदय रहने से संयम में मल उत्पन्न करने वाला प्रमाद रूप परिणाम होता है, अतएव इस गुणस्थान को प्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं।

१४. प्रश्न : अप्रमत्तविरत गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जब संज्वलन और नोकषाय का मन्द उदय होता है तब सकलसंयम से युक्त मुनि के प्रमाद-रूप परिणामों का अभाव हो जाता है, इसलिए इसे अप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं।

१५. प्रश्न : अप्रमत्तविरत गुणस्थान के कितने भेद हैं ?

उत्तर : अप्रमत्तविरत गुणस्थान के दो भेद हैं- १. स्वस्थान अप्रमत्तविरत और २. सातिशय अप्रमत्तविरत। जो सातवें गुणस्थान से छठे में और छठे गुणस्थान से सातवें में उतरते-चढ़ते रहते हैं उनको स्वस्थान अप्रमत्तविरत कहते हैं। जो उपशम अथवा क्षपक श्रेणी के सम्मुख होकर अधःप्रवृत्तकरणरूप परिणाम करते हैं, उनको सातिशय अप्रमत्तविरत कहते हैं।

१६. प्रश्न : अधःप्रवृत्तकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जहाँ सम-समयवर्ती जीवों के परिणाम भिन्न-समयवर्ती जीवों के परिणामों से समान और असमान दोनों प्रकार के होते हैं उसे अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं। इन अधःप्रवृत्तकरण

परिणामों की अपेक्षा अप्रमत्तविरत गुणस्थान का दूसरा नाम अधःकरण भी है। ऊपर के और नीचे के परिणामों में अनुकर्षण को दिखाने वाली अनुकृष्टि-रचना यहाँ पर होती है।

१७. प्रश्न : अपूर्वकरण गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जहाँ सम-समयवर्ती जीवों के परिणाम समान और असमान दोनों प्रकार के और भिन्न-समयवर्ती जीवों के परिणाम असमान ही होते हैं, उसे अपूर्वकरण गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में अनुकृष्टि रचना नहीं होती है।

१८. प्रश्न : अनुकृष्टि-रचना किसे कहते हैं ?

उत्तर : ऊपर के और नीचे के परिणामों में अनुकर्षण अर्थात् सादृश्य दिखाने वाली रचना को अनुकृष्टि रचना कहते हैं।

१९. प्रश्न : अपूर्वकरण परिणामों के द्वारा क्या-क्या आवश्यक कार्य होते हैं ?

उत्तर : अपूर्वकरण परिणामों के द्वारा चार आवश्यक कार्य होते है। (१) गुणश्रेणी निर्जरा (२) गुणसंक्रमण (३) स्थितिखण्डन

और (४) अनुभाग-खण्डन। ये चारों ही कार्य पूर्वबद्ध कर्मों में होते हैं। इन परिणामों के द्वारा जीव मोहनीय कर्म की २१ प्रकृतियों का क्षपण अथवा उपशमन करने के लिए उद्यत होते हैं।

२०. प्रश्न : गुणश्रेणी निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर : गुणित रूप से उत्तरोत्तर समयों में कर्म–परमाणुओं का झरना (निर्जीर्ण होना) गुणश्रेणी निर्जरा है जैसे किसी जीव के पहले समय में १० कर्म–परमाणु उदय में आये, फिर दूसरे समय में १० गुणे असंख्यात परमाणु उदय में आये। तीसरे समय में १० गुणे असंख्यात गुणे असंख्यात परमाणु उदय में आये। चौथे समय में तीसरे समय से भी असंख्यात गुणे परमाणु उदय में आये। इस तरह लगातार असंख्यात गुणे-असंख्यात गुणे कर्म परमाणुओं का उदय में आना गुणश्रेणी निर्जरा है।

माना कि असंख्यात=२ हो तथा प्रथम समय में उदीयमान परमाणु १० हों तो प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि समयों में उदयागत परमाणुओं की संख्या ऐसी होगी– १०, २०,

४०, ८०, १६०, ३२० ६४०, १२८०, यही गुणश्रेणी निर्जरा है।

गुणश्रेणी निर्जरा में अशुभ कर्मों का रस भी मन्द पड़कर उदय में आता है। गुणश्रेणी निर्जरा वैसे शुभाशुभ दोनों कर्मों की होती है। चौथे गुणस्थान में निरन्तर गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती (मो.मा प्र.-३५१, ३६१ सस्ती ग्रन्थमाला)। संयम (व्रत) होने पर ही निरन्तर गुणश्रेणी निर्जरा होती है (धवल-८/८३)। अतः पंचम गुणस्थान से निरन्तर गुणश्रेणी निर्जरा होती है। (ज.ध. १२)।

२१. **प्रश्न : गुणसंक्रमण किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जहाँ पर प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणीक्रम से परमाणुप्रदेश अन्य प्रकृति रूप परिणमे, उसे गुणसंक्रमण कहते हैं ?

२२. **प्रश्न : स्थितिखण्डन (स्थितिकांडकघात) किसे कहते हैं ?**

उत्तर : कर्मों की स्थिति के उपरिम अंश, खण्ड या पौरों को खरोंचकर नष्ट कर देने को स्थितिखण्डन या स्थितिकाण्डकघात कहते हैं। स्थितिकाण्डकघात के द्वारा कर्मों का स्थितिसत्त्व कम हो जाता है।

२३. प्रश्न : अनुभागखण्डन (अनुभागकाण्डकघात) किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्मों के अनुभाग के उपरिम अंश, खण्ड या पौरों को खरोंचकर नष्ट कर देने को अनुभाग-खण्डन या अनुभागकाण्डकघात कहते हैं। अनुभागकाण्डकघात के द्वारा कर्मों का अनुभागसत्व कम हो जाता है।

२४. प्रश्न : अनिवृत्तिकरण गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक समयवर्ती नाना जीवों में जिस प्रकार शरीर की अवगाहना आदि बाह्य तथा ज्ञानावरणादि कर्म के क्षयोपशमादि अन्तरंग कारणों से परस्पर भेद पाया जाता है, उस प्रकार एकसमयवर्ती नाना जीवों के परिणामों में (विशुद्धि की अपेक्षा) निवृत्ति-भेद नहीं पाया जाता है, परन्तु भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणामों में सर्वथा भेद ही पाया जाता है, उसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थान कहते हैं।

इन तीनों कारणों का काल उत्तरोत्तर कम होता है और परिणामों की संख्या उत्तरोत्तर अधिक-अधिक होती है।

२५. प्रश्न : सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस प्रकार धुले हुए कसूमी वस्त्र में सूक्ष्म लालिमा रह जाती है, उसी प्रकार जहाँ चारित्र मोहनीय कर्म की बीस प्रकृतियों का उपशम अथवा क्षय हो जाने पर सूक्ष्म कृष्टि को प्राप्त संज्वलन लोभ कषाय का ही उदय पाया जाय, उसको सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में यथाख्यात चारित्र से कुछ न्यून चारित्र पाया जाता है।

२६. प्रश्न : सूक्ष्म कृष्टि की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तर : जो स्पर्धक अनिवृत्तिकरण के पूर्व में पाये जाते हैं, उनको **पूर्वस्पर्धक** कहते हैं। अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम के निमित्त से जिनका अनुभाग अनन्त-गुण क्षीण हो जाता है उनको **अपूर्वस्पर्धक** कहते हैं। जिनका अनुभाग अपूर्वस्पर्धक से भी अनन्तगुणा क्षीण हो जाता है, उनको **बादरकृष्टि** कहते हैं। जिनका अनुभाग बादरकृष्टि से भी अनन्तगुणा क्षीण हो जाता है, उनको **सूक्ष्मकृष्टि** कहते हैं। ये सब कार्य नवम् गुणस्थान में होते हैं।

२७. प्रश्न : अविभागप्रतिच्छेद, समयप्रबद्ध, वर्ग, वगणा और स्पर्धक किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्मों के फल देने की शक्ति को **अनुभाग** और उस शक्ति के सबसे छोटे अंश को **अविभाग-प्रतिच्छेद** कहते हैं।

संसारावस्था में प्रति समय बँधने वाले कर्म या नोकर्म के समस्त परमाणुओं के समूह को **समयप्रबद्ध** कहते हैं।

विवक्षित समयप्रबद्ध में सबसे कम अनुभाग शक्ति के अंश अर्थात् अविभागप्रतिच्छेद जिस परमाणु में पाये जाते हैं, उसे **वर्ग** कहते हैं।

समान संख्यावाले अविभाप्रतिच्छेद जिनमें पाये जायँ, उन सब वर्गों के समूह को **वर्गणा** कहते हैं।

जिनमें अविभागप्रतिच्छेदों की समान वृद्धि पायी जाय उन वर्गणाओं के समूह को **स्पर्धक** कहते हैं।

२८. प्रश्न : उपशान्तमोह गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : निर्मली-फल से युक्त जल की तरह अथवा शरद् ऋतु में ऊपर से स्वच्छ हो जाने वाले सरोवर के जल की तरह सम्पूर्ण मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले

निर्मल परिणामों को उपशान्तमोह गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान का धारक जीव अन्तर्मुहूर्त के भीतर आयुक्षय अथवा (गुणस्थान के) काल क्षय के कारण नियम से नीचे के गुणस्थान में पतन करता है।

२९. **प्रश्न : क्षीणमोह गुणस्थान किसे कहते हैं ?**

उत्तर : मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाने से जहाँ आत्मा के परिणाम स्फटिकमणि के स्वच्छ पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल होते हैं, उसे क्षीणमोह गुणस्थान कहते हैं।

३०. **प्रश्न : सयोगकेवली गुणस्थान किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जहाँ घातिया कर्मों की ४७, नामकर्म की १३ एवं आयुकर्म की ३, इस प्रकार ६३ प्रकृतियों के क्षय से केवलज्ञान प्राप्त होता है तथा योगसहित प्रवृत्ति होती है, उसे सयोगकेवली गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में आत्मा अनन्त चतुष्टय एवं नव केवललब्धि से युक्त होता है। घातिकर्म का क्षय होने से वे जिन, जिनेन्द्र अथवा अरिहन्त कहलाते हैं। तीर्थंकर अरहन्त के समवसरण की रचना होती है।

३१. प्रश्न : अयोगकेवली गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जहाँ मन, वचन और काय इन तीनों योगों का सर्वथा अभाव हो जाता है उसे अयोगकेवली गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान का काल ' अ इ उ ऋ लृ' इन पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण काल के बराबर है। इसके उपान्त्य समय में ७२ और अन्त्य समय में १३ प्रकृतियों का क्षय होता है। कर्मबन्ध से मुक्त होते ही आत्मा के प्रदेश एक समय में ऋजुगति से सिद्धालय में पहुँच जाते हैं।

३२. प्रश्न : सिद्धालय कहाँ है ?

उत्तर : लोक के अन्त में तनुवातवलय के अन्तिम ५२५ धनुष प्रमाण क्षेत्र में सिद्धालय है अर्थात् सिद्ध परमेष्ठी का वहीं निवास होता है। सिद्धात्मा के प्रदेश ऊर्ध्वगमन-स्वभाव के कारण यद्यपि ऊपर की ओर जाते हैं परन्तु आगे के धर्मास्तिकाय का अभाव होने से लोकान्त में ही ठहर जाते हैं।

३३. प्रश्न : मोहनीय कर्म की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान में कौन-कौन से भाव पाये जाते हैं ?

उत्तर : दर्शनमोहनीय कर्म की अपेक्षा प्रथम गुणस्थान में औदयिक

भाव, द्वितीय गुणस्थान में पारिणामिक भाव, तृतीय गुणस्थान में क्षायोपशमिक भाव और चतुर्थ गुणस्थान में औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक तीनों ही भाव पाये जाते हैं।

दर्शनमोहनीय कर्म की अपेक्षा देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत इन तीनों गुणस्थानों में औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव पाये जाते हैं। चारित्रमोहनीय कर्म की अपेक्षा इन तीनों गुणस्थानों में मात्र क्षायोपशमिक भाव पाया जाता है।

दर्शनमोहनीय कर्म की अपेक्षा उपशम श्रेणी वाले आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारहवें गुणस्थानों में औपशमिक और क्षायिक भाव पाया जाता है। चारित्रमोहनीय कर्म की अपेक्षा इन चारों गुणस्थानों में मात्र औपशमिक भाव ही पाया जाता है।

दर्शनमोहनीय एवं चारित्रमोहनीय कर्म की अपेक्षा क्षपक श्रेणी वाले आठवें, नौवें, दसवें और बारहवें गुणस्थानों में एक क्षायिक भाव ही पाया जाता है। सयोगकेवली, अयोगकेवली और गुणस्थानातीत सिद्धों में भी नियम से एक क्षायिक भाव ही पाया जाता है।

३४. **प्रश्न : यह जीव गुणस्थानों में किस क्रम से चढ़ता–उतरता है ?**

उत्तर : **मिथ्यादृष्टि गुणस्थान** भूमिका स्वरूप है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीव करणलब्धि के प्रभाव से सम्यक्त्वघातक प्रकृतियों के उपशम से **चतुर्थ गुणस्थान** में जाते हैं। सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से **चतुर्थ गुणस्थान** में जाते हैं।

सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से **तीसरे गुणस्थान** में जाते हैं।

सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व एवं पाँच पापों के एकदेशत्यागरूप परिणाम से **देशविरत गुणस्थान** में जाते हैं।

सादि मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्व एवं प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के अनुदय से होने वाले चारित्ररूप परिणाम से **अप्रमत्तविरत गुणस्थान** में जाते हैं।

इस कथन से यह प्रतिफलित होता है कि **मिथ्यादृष्टि जीव सासादन और प्रमत्तविरत को छोड़कर अप्रमत्तविरत पर्यन्त चार गुणस्थानों को प्राप्त हो सकते हैं।**

सासादन गुणस्थानवर्ती जीव ऊपर के किसी गुणस्थान को प्राप्त नहीं होते हैं। ये जीव नियम से मिथ्यात्वगुणस्थान को ही प्राप्त होते हैं।

मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से चतुर्थ गुणस्थान को प्राप्त होते हैं, तो मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानवर्ती उपशम सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं।

वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन और दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों का अर्थात् सात प्रकृतियों का क्षय होने पर क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं।

चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क के अनुदय से पंचम गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के अनुदय से सप्तम् गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव मिश्रप्रकृति के उदय से तीसरे गुणस्थान को, अनन्तानुबन्धी के उदय से दूसरे गुणस्थान

को और मिथ्यात्व के उदय से प्रथम गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

पंचम गुणस्थानवर्ती जीव प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के अनुदय से सप्तम् गुणस्थान को प्राप्त होते हैं। ये नीचे के चारों गुणस्थानों को भी प्राप्त हो सकते हैं।

षष्ठ गुणस्थानवर्ती जीव नीचे के पाँच गुणस्थानों को प्राप्त होते हैं परन्तु ऊपर के अप्रमत्तविरत गुणस्थान पर्यन्त जाते हैं, आगे नहीं।

सप्तम् गुणस्थानवर्ती जीव अपूर्वकरण को, छठे गुणस्थान को और मरण की अपेक्षा देवगति सम्बन्धी चतुर्थ गुणस्थान (इस प्रकार तीन गुणस्थानों) को प्राप्त होते हैं।

उपशम श्रेणी वाले आठवें, नौवें एवं दसवें गुणस्थानवर्ती जीव चढ़ने की अपेक्षा अनन्तर ऊपर के, गिरने की अपेक्षा अनन्तर नीचे के और मरण की अपेक्षा देवगति सम्बन्धी चतुर्थ गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव गिरने की अपेक्षा दसवें और मरण की अपेक्षा चौथे गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

क्षपकश्रेणी वाले आठवें और नौवें गुणस्थानवर्ती जीव

चढ़ने की अपेक्षा अनन्तर ऊपर के गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

क्षपकश्रेणी वाले दसवें गुणस्थानवर्ती जीव नियम से बारहवें गुणस्थान को प्राप्त होते हैं और वहाँ से क्रम से आगे के गुणस्थानों को प्राप्त होते हुए मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

३५. **प्रश्न : उपशम श्रेणी किसे कहते हैं और उसे कौन जीव प्राप्त करते हैं ?**

उत्तर : चारित्रमोहनीय का उपशम करने के लिए जो श्रेणी मांडी जाती है उसे उपशम श्रेणी कहते हैं। इसे द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि दोनों मांड सकते हैं। अधःकरण परिणामों से श्रेणी का प्रारंभ होता है। इस श्रेणी वाले जीव अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म-साम्पराय गुणस्थानों को क्रम से प्राप्त करते हुए सूक्ष्मसाम्पराय के अन्त में चारित्रमोह का बिलकुल उपशम कर चुकते है और उसके बाद ग्यारहवें उपशान्त मोह गुणस्थान को प्राप्त होते हैं। वहाँ से क्रमपूर्वक गिरकर नीचे आते हैं।

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव ११वें गुणस्थान से गिरते हुए

प्रथमगुणस्थान तक आ सकते है, परन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव चतुर्थ गुणस्थान से नीचे नहीं आते हैं।

३६. **प्रश्न : उपशमश्रेणी अधिक से अधिक कितनी बार प्राप्त की जाती है ?**

उत्तर : उपशम श्रेणी अधिक से अधिक चार बार प्राप्त की जा सकती है परन्तु एक भव में दो बार ही प्राप्त की जाती है। पाँचवीं बार नियम से क्षपक श्रेणी प्राप्त होती है।

३७. **प्रश्न : क्षपक श्रेणी किसे कहते हैं और इसे कौन जीव प्राप्त करते हैं ?**

उत्तर : जिसमें चारित्रमोहनीय का क्षय होता है उसे क्षपकश्रेणी कहते हैं। इस श्रेणी का प्रारंभ भी अधःकरण परिणामों से होता है। इस श्रेणी वाले जीव क्रम से अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानों को प्राप्त होते हुए सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के अन्त में चारित्रमोहनीय का सर्वथा क्षय कर बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान को प्राप्त होते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही इसे मांड सकते हैं। इस श्रेणी वाले जीव का नीचे की ओर पतन नहीं होता है और मरण भी नहीं होता है।

३८. प्रश्न : मरण किन-किन जीवों का नहीं होता है ?

उत्तर : मिश्रगुणस्थान वाले, निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था को धारण करने वाले मिश्रकाययोगी, क्षपक श्रेणी सम्बन्धी आठवें, नौवें, दसवें एवं बारहवें गुणस्थान वाले, उपशमश्रेणी चढ़ते हुए अपूर्वकरण गुणस्थान के पहले भाग वाले (जब तक निद्रा और प्रचला की बन्ध - व्युच्छित्ति नहीं होती है), प्रथमोपशम सम्यक्त्व वाले, तेरहवें गुणस्थान वाले और सातवें नरक के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ गुणस्थान वाले जीव मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करके मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले जीव अन्तर्मुहूर्त तक मरण को प्राप्त नहीं होते हैं। क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सम्मुख जीव जब तक मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क का क्षय नहीं कर देते हैं अर्थात् जब तक कृतकृत्यता रहती है तब तक मरण नहीं करते हैं। कृतकृत्यता समाप्त हो जाने पर मरण करते हैं।[1]

---

१. *एक मत के अनुसार कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वी का मरण होता है। (लब्धिसार)। दूसरे मत के अनुसार कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वी का मरण नहीं होता है। (जयधवला पु. २/२१५ से २२०)*

३९. **प्रश्न : कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर कहाँ-कहाँ उत्पन्न होते हैं ?**

उत्तर : कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त है। उसके चार भागों में से पहले भाग में मरे हुए जीव देवों में, दूसरे भाग में मरे हुए जीव देवों और मनुष्यों में, तीसरे भाग में मरे हुए जीव देव, मनुष्य और तिर्यंचों में तथा चौथे भाग में मरे हुए जीव चारों गतियों में से किसी भी गति में उत्पन्न होते हैं।

४०. **प्रश्न : जीवसमास किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिन धर्मविशेषों के द्वारा अनेक जीवों तथा उनकी अनेक जातियों का संग्रह किया जा सके, ऐसे धर्म विशेषों को **जीवसमास** कहते हैं।

४१. **प्रश्न : जीवसमास के कितने भेद हैं ?**

उत्तर : जीवसमास के अनेक भेद हैं परन्तु उनमें १४ भेद, ५७ भेद और ९८ भेद अधिक प्रसिद्ध हैं।

४२. **प्रश्न : जीवसमास के चौदह भेद कौन-कौन से हैं ?**

उत्तर : एकेन्द्रिय के दो भेद -बादर और सूक्ष्म, विकलत्रय के तीन भेद - द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के दो भेद-सैनी असैनी; इस तरह इन सातों ही प्रकार के जीवों

के पर्याप्त और अपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद करने से जीवसमास के चौदह भेद होते हैं।

४३. **प्रश्न : जीवसमास के सत्तावन भेद कौन कौन से हैं ?**

उत्तर : पृथिवी-जल-अग्नि, वायुकायिक, नित्य निगोद तथा इतर निगोद इन छह प्रकार के जीवों के बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा दो-दो भेद, प्रत्येक वनस्पति के सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित की अपेक्षा दो भेद, इस प्रकार एकेन्द्रिय जीव के चौदह भेद हुए। उनमें त्रस के द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सैनी, पंचेन्द्रिय और असैनी पंचेन्द्रिय ये पाँच भेद मिलाने से १९ भेद होते हैं। उनके पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन-तीन भेद होने से सब मिलकर जीवसमास के सत्तावन भेद होते हैं।

४४. **प्रश्न : जीवसमास के अठानवे भेद कौन-कौन से हैं ?**

उत्तर : एकेन्द्रिय के उपर्युक्त १४ भेद के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन-तीन भेद हैं, अतः एकेन्द्रिय सम्बन्धी (१४ x ३) = ४२ भेद होते हैं।

विकलत्रय के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन-तीन भेद हैं, अतः विकलत्रय के (३ x ३) = ९ भेद होते हैं।

कर्मभूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के संज्ञी और असंज्ञी की अपेक्षा दो भेद हैं। इन दोनों के जलचर, थलचर और नभचर की अपेक्षा तीन-तीन भेद होने से ६ भेद होते हैं। ये छह प्रकार के जीव गर्भ, जन्म और सम्मूर्च्छन जन्म की अपेक्षा दो प्रकार के होते हैं। गर्भ जन्म वाले छह प्रकार के जीवों के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद हैं अतः (६ x २) = १२ भेद होते हैं। सम्मूर्च्छन जन्म वाले छह प्रकार के जीवों के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन-तीन भेद हैं, अतः (६ x ३) = १८ भेद होते हैं।

इस प्रकार कर्मभूमिज तिर्यंच के (१२ + १८) = ३० भेद होते हैं।

भोगभूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के थलचर और नभचर, ये दो भेद होते हैं। इनके पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद हैं, अतः (२ x २) = ४ भेद होते हैं।

आर्यखण्ड के मनुष्य के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन भेद होते हैं।

म्लेच्छखण्ड के मनुष्य के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की

अपेक्षा दो भेद होते हैं।

भोगभूमिज और कुभोगभूमिज मनुष्य के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद होते हैं।

देव और नारकियों के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद होते हैं।

इस तरह तिर्यंच के (४२ + ६ + १२ + १८ + ४) = ८५ भेद, मनुष्य के (३ + २ + ४) = ६ भेद, देव के २ भेद और नारकी के २ भेद, ये सब मिलाकर जीवसमास के (८५ + ६ + ४) = ६८ भेद होते हैं।

४५. **प्रश्न : योनि किसे कहते हैं तथा इसके कितने भेद होते हैं ?**

उत्तर : जीव के उत्पत्ति-स्थान को योनि कहते हैं। योनि के २ भेद हैं-१. आकारयोनि और २. गुणयोनि। आकारयोनि के मनुष्य की अपेक्षा ३ भेद हैं - १. शंखावर्त योनि, २. कूर्मोन्नत योनि और ३. वंशपत्र योनि। गुण योनि के ९ भेद हैं-१.सचित्त, २. अचित्त, ३. सचित्ताचित्त, ४. शीत, ५. उष्ण, ६ शीतोष्ण, ७. संवृत ८ विवृत और ९. संवृतविवृत।

४६. प्रश्न : ३ प्रकार की आकार योनियों का स्वरूप क्या है ?

उत्तर : शंखावर्त योनि : इस योनि का आकार शंख के आवर्त समान होता है। इस योनि वाली स्त्री के गर्भ नहीं रहता है।

कूर्मोन्नत योनि : इस योनि का आकार कुछए की पीठ की तरह उन्नत होता है। इस योनि वाली स्त्री के तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र तथा साधारण मनुष्य भी उत्पन्न होते हैं।

वंशपत्र योनि : इस योनि का आकार वंशपत्र के समान लम्बा होता है। इस योनि वाली स्त्री के साधारण मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं।

४७. प्रश्न : ९ प्रकार की गुणयोनियों का स्वरूप क्या है ?

उत्तर : सचित्त : आत्मप्रदेशों से युक्त पुद्गल पिण्ड को सचित्त योनि कहते हैं।

अचित्त : आत्मप्रदेशों से रहित पुद्गलपिण्ड को अचित्त योनि कहते हैं।

सचित्ताचित्त : जन्म के आधारभूत स्थान के कुछ पुद्गल सचित्त और कुछ पुद्गल अचित्त हों, उन को सचित्ताचित्त योनि कहते हैं।

शीत, उष्ण और शीतोष्ण : शीत, उष्ण और मिश्र गुणों से युक्त पुद्गल परमाणुवाली योनि को क्रम से शीत, उष्ण और शीतोष्ण योनि कहते हैं।

संवृत, विवृत और संवृत-विवृत : कुछ ढकी हुई, कुछ खुली हुई और कुछ ढकी हुई और कुछ खुली हुई योनि को क्रम से संवृत, विवृत और संवृत-विवृत योनि कहते हैं।

४८. प्रश्न : जन्म किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर : जीव की उत्पत्ति को जन्म कहते हैं। जन्म के तीन भेद है - १. गर्भ जन्म, २. उपपाद जन्म और ३. सम्मूर्च्छन जन्म।

४९. प्रश्न : गर्भ जन्म किसे कहते हैं ? यह किसके होता है?

उत्तर : नर और मादा की रतिक्रिया के बाद रज और वीर्य मिलने से जो जन्म होता है, उसे गर्भ जन्म कहते हैं।

इन तीन प्रकार के जीवों के गर्भजन्म ही होता है। १. जरायुज, २. अंडज और ३. पोत।

जरायुज : जाल के समान मांस और खून से व्याप्त एक प्रकार की थैली से लिपटे हुए जो जीव पैदा होते हैं, उन्हें जरायुज कहते हैं जैसे- गाय, भैंस, मनुष्य आदि।

अण्डज : जो जीव अण्डे से उत्पन्न होते हैं, उन्हें अण्डज कहते हैं। जैसे-चील, कबूतर आदि।

पोत : जो जीव आवरण रहित उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होते ही जो चलने-फिरने लग जाते हैं उन्हें पोत कहते हैं जैसे-सिंह, हिरण, बिल्ली आदि।

५०. प्रश्न : उपपाद जन्म किसे कहते हैं और यह किसके होता है ?

उत्तर : सम्पुट शय्या एवं उष्ट्रादि मुखाकार बिलों में लघु अन्तर्मुहूर्त काल में ही जीव का उत्पन्न होना उपपाद जन्म है। उपपाद जन्म देव और नारकियों के ही होता है।

५१. प्रश्न : सम्मूर्च्छन जन्म किसे कहते हैं और यह किसके होता है ?

उत्तर : इधर-उधर के परमाणुओं के मिलने से जो जन्म होता है उसे सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं। सम्मूर्च्छन जन्म मनुष्य और तिर्यंचों के ही होता है। एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय पर्यन्त तिर्यंचों के नियम से सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है। सम्मूर्च्छन जन्म वाले मनुष्य स्त्री-पुरुष के मल-मूत्र तथा

पसीना आदि में उत्पन्न होते हैं। सम्मूर्च्छन जन्म वाले मनुष्य अपर्याप्त ही होते हैं।

५२. प्रश्न : किस जन्म की कौन-सी गुणयोनि होती है ?

उत्तर : उपपाद जन्म की अचित्त, शीत, उष्ण और संवृत योनियाँ होती हैं। गर्भ जन्म की सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण और संवृत-विवृत योनियाँ होती हैं।

सम्मूर्च्छन जन्म की सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, एकेन्द्रिय की संवृत, विकलेन्द्रिय की विवृत और पंचेन्द्रिय जीवों की विवृत योनि होती है।

५३. प्रश्न : विस्तार से गुणो योनि के कितने भेद हैं ?

उत्तर : विस्तार से गुणयोनि के चौरासी लाख भेद हैं; जो इस प्रकार है-नित्य निगोद, इतर निगोद एवं पृथिवी-जल-अग्नि और वायुकायिक इन छह प्रकार के जीवों में से प्रत्येक की सात-सात लाख, प्रत्येक वनस्पति की दस लाख, विकलत्रयों में प्रत्येक की दो-दो लाख, देव-नारकी और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में प्रत्येक की चार-चार लाख और मनुष्यों की चौदह लाख इस तरह सब मिलाकर गुणयोनि के चौरासी लाख भेद होते हैं।

५४. **प्रश्न : सबसे जघन्य और सबसे उत्कृष्ट अवगाहना किसकी होती है ?**

उत्तर : सबसे **जघन्य-अवगाहना** ऋजुगति से उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म-निगोदिया-लब्ध्यपर्याप्तक जीव के उत्पत्ति से तीसरे समय में होती है, जिसका प्रमाण घनांगुल का असंख्यातवाँ भाग है।

उत्कृष्ट अवगाहना स्वयम्भूरमण समुद्र के मध्य में होने वाले महामत्स्य की होती है, जिसका प्रमाण एक हजार योजन लम्बा, पाँच सौ योजन चौड़ा और ढाई सौ योजन मोटा है।

५५. **प्रश्न : इन्द्रियों की अपेक्षा जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी है और वह किनके होती है ?**

उत्तर : एकेन्द्रिय जीवों में कमल की कुछ अधिक एक हजार योजन, द्वीन्द्रिय जीवों में शंख की बारह योजन, त्रीन्द्रिय जीवों में चींटी की तीन कोश, चतुरिन्द्रिय जीवों में भ्रमर की एक योजन और पंचेन्द्रिय जीवों में महामत्स्य की एक हजार योजन उत्कृष्ट अवगाहना है। उत्कृष्ट अवगाहना के धारक जीव स्वयम्भूरमण द्वीप और स्वयम्भूरमण समुद्र में होते हैं।

५६. **प्रश्न : इन्द्रियों की अपेक्षा पर्याप्तक द्वीन्द्रियादि जीवों की जघन्य अवगाहना कितनी है और किनके होती है ?**

उत्तर : पर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवों में सबसे जघन्य अवगाहना अनुन्धरी नामक जीव की घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण, त्रीन्द्रिय जीवों में कुन्थु नामक ज़ीव की इससे संख्यातगुणी, चतुरिन्द्रिय जीवों में काणमक्षिका नामक जीव की इससे संख्यातगुणी पंचेन्द्रिय जीवों में महामत्स्य के कान में रहने वाले सिक्थक मत्स्य की इससे संख्यातगुणी होती है।

५७. **प्रश्न : कुल किसे कहते हैं और किस जीव के कितने कुल होते हैं ?**

उत्तर : भिन्न-भिन्न शरीरों की उत्पत्ति में कारणभूत नोकर्मवर्गणा के भेदों को कुल कहते हैं।

पृथिवीकायिक	-	२२ लाख कोटि
जलकायिक	-	७ लाख कोटि
अग्निकायिक	-	३ लाख कोटि
वायुकायिक	-	७ लाख कोटि
वनस्पतिकायिक	-	२८ लाख कोटि
द्वीन्द्रिय	-	७ लाख कोटि

त्रीन्द्रिय	-	८ लाख कोटि
चतुरिन्द्रिय	-	९ लाख कोटि
पंचेन्द्रिय जलचर	-	१२½ लाख कोटि
पंचेन्द्रिय पक्षी	-	१२ लाख कोटि
पंचेन्द्रिय पशु	-	१० लाख कोटि
पंचेन्द्रिय छाती के सहारे चलने वाले	-	९ लाख कोटि
देव	-	२६ लाख कोटि
नारकी	-	२५ लाख कोटि
मनुष्य	-	१४ लाख कोटि
अथवा	-	१२ लाख कोटि
कुल	-	१९९½ लाख कोटि
अथवा	-	१९७½ लाख कोटि

इस प्रकार समस्त कुल-कोटियो की संख्या एक कोड़ा-कोड़ी निन्यानवे लाख पचास हजार कोटि होती है। कहीं-कहीं मनुष्यों की १२ लाख कुल कोटियां बतायी गई है, अतः उनके मत से समस्त कुलों का परिमाण एक कोड़ा-कोड़ी सत्तानवे लाख पचास हजार कोटि होता है।

५८. प्रश्न : योनि और कुल में क्या अन्तर है ?

उत्तर : कन्द, मूल, अण्डा, गर्भ, रस, स्वेद आदि जीव के उत्पत्ति-स्थान को योनि कहते हैं।

भिन्न-भिन्न शरीर की उत्पत्ति में कारणभूत नोकर्मवर्गणा के भेदों को कुल कहते हैं।

५९. प्रश्न : पर्याप्ति किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर : आहार, शरीर, इन्द्रिय, आनापान, भाषा और मनरूप शक्तियों की पूर्णता के कारण को पर्याप्ति कहते हैं। पर्याप्ति के छह भेद हैं- १. आहार, २. शरीर, ३. इन्द्रिय, ४. श्वासोच्छ्वास, ५. भाषा और ६. मन।

६०. प्रश्न : आहार पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर : नवीन शरीर के लिए कारणभूत जिन नोकर्मवर्गणाओं को जीव ग्रहण करता है, उनको खल और रसभाग रूप परिणमने की शक्ति की निमित्तभूत आगत पुद्गल स्कन्धों की प्राप्ति को **आहारपर्याप्ति** कहते हैं। शरीर को ग्रहण करने के प्रथम समय से लेकर एक अन्तर्मुहूर्त में आहार पर्याप्ति निष्पन्न होती है।

६१. प्रश्न : शरीर पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर : तिल की खली के समान उस खलभाग को हड्डी आदि कठिन अवयवरूप से और तिल के तेल के समान रसभाग को रस, रुधिर, वसा, वीर्य आदि द्रव अवयव सहित औदारिक आदि तीन शरीर रूप से परिणमन करने वाली शक्ति से युक्त पुद्गल स्कन्धों की प्राप्ति को **शरीरपर्याप्ति** कहते हैं। यह शरीर पर्याप्ति आहारपर्याप्ति के पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण होती है।

६२. प्रश्न : इन्द्रिय पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर : योग्य देश में स्थित रूपादि से युक्त पदार्थों के ग्रहण करने रूप शक्ति की उत्पत्ति के निमित्तभूत पुद्गलप्रचय की प्राप्ति को **इन्द्रियपर्याप्ति** कहते हैं। यह इन्द्रिय पर्याप्ति भी शरीर पर्याप्ति के पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण होती है।

६३. प्रश्न : श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर : उच्छ्वास और निःश्वासरूप शक्ति की पूर्णता के निमित्तभूत पुद्गल प्रचय की प्राप्ति को **श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति** कहते हैं। यह पर्याप्ति इन्द्रिय पर्याप्ति के अनन्तर एक अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण होती है।

६४. प्रश्न : भाषापर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर : भाषा वर्गणा के स्कन्धों के निमित्त से चार प्रकार की भाषा रूप से परिणमन करने की शक्ति की निमित्तभूत नोकर्म पुद्गलप्रचय की प्राप्ति को **भाषापर्याप्ति** कहते हैं। यह पर्याप्ति भी श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति के पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण होती है।

६५. प्रश्न : मनःपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर : अनुभूत अर्थ के स्मरण रूप शक्ति की निमित्तभूत मनोवर्गणा के स्कन्धों से निष्पन्न पुद्गलप्रचय की प्राप्ति को **मनःपर्याप्ति** कहते हैं। यह पर्याप्ति भी भाषापर्याप्ति के पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण होती है।

इन सब पर्याप्तियों में प्रत्येक का काल अन्तर्मुहूर्त है और सबका मिलाकर भी अन्तर्मुहूर्त ही है। सब पर्याप्तियों का प्रारम्भ एक साथ होता है, परन्तु पूर्णता क्रम से होती है।

६६. प्रश्न : पर्याप्तक, निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक किसे कहते हैं ?

उत्तर : पर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त जिन जीवों की शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जाती है, उन्हें पर्याप्तक जीव कहते हैं।

पर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त जिनकी जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है तब तक उन्हें निर्वृत्यपर्याप्तक कहते हैं। ये जीव पर्याप्त नामकर्म के उदय से पर्याप्तक ही होते हैं, परन्तु निर्वृतिरचना की अपेक्षा कुछ काल तक निर्वृत्यपर्याप्तक कहे जाते हैं।

अपर्याप्त नाम कर्म के उदय से युक्त जिनकी एक भी पर्याप्ति न पूर्ण हुई है और न आगे पूर्ण होगी, उन्हें लब्ध्यपर्याप्तक जीव कहते हैं। ऐसे जीवों का शीघ्र ही मरण हो जाता है, इनकी आयु श्वास के अठारहवें भाग मात्र होती है।

६७. प्रश्न : लब्ध्यपर्याप्तक जीव एक अन्तर्मुहूर्त में अधिक से अधिक कितने भव धारण कर सकता है ?

उत्तर : एक लब्धपर्याप्तक जीव यदि निरन्तर जन्म-मरण करे तो एक अन्तर्मुहूर्त में अधिक से अधिक ६६३३६ बार जन्म और उतने ही बार मरण कर सकता है। इन भवों में प्रत्येक भव का काल क्षुद्रभव प्रमाण अर्थात् एक श्वास का अठारहवाँ भाग है, फलत: ६६३३६ भवों के श्वासों का प्रमाण ३६८५ $\frac{1}{3}$ होता है। इतने काल में पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और साधारण

वनस्पति के बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक वनस्पति इन ग्यारह प्रकार के लब्ध्यपर्याप्तक जीवों में से प्रत्येक के ६०१२-६०१२ उत्कृष्ट भव की अपेक्षा एकेन्द्रियों के उत्कृष्ट भव ६०१२ X ११ = ६६१३२ होते हैं। द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट ८० भव, त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट ६० भव, चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट ४० भव, असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट ८ भव, संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट ८ भव और मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट ८ भव इस प्रकार सब मिलाकर एक अन्तर्मुहूर्त काल में उत्कृष्ट ६६३३६ भव होते हैं।

६८. **प्रश्न : लब्ध्यपर्याप्तक, निर्वृत्यपर्याप्तक और पर्याप्त अवस्था किन-किन गुणस्थानों में होती है ?**

उत्तर : लब्ध्यपर्याप्त अवस्था मात्र मिथ्यात्व गुणस्थान में होती है। वह भी सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न होने वाले मनुष्यगति और तिर्यञ्चगति के जीवों के होती है, अन्य जीवों के नहीं होती ।

निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था मिथ्यात्व, सासादन सम्यक्त्व, असंयत सम्यक्त्व, आहारकशरीर की अपेक्षा प्रमत्तविरत

और समुद्घात की अपेक्षा सयोगकेवली जिन के होती है। पर्याप्त अवस्था सभी गुणस्थानों में होती है।

६९. केवली भगवान का शरीर पूर्ण है और उनके पर्याप्त नामकर्म का उदय भी है तथा काय-योग भी है तब उनको अपर्याप्त क्यों कहा ?

उत्तर : केवली भगवान के काययोग आदि सभी विद्यमान हैं तथापि उनके समुद्घात की कपाट प्रतर और लोकपूरण तीनों ही अवस्थाओं में योग पूर्ण नहीं होने से आगम में गौणता से उनको अपर्याप्त कहा है।

७०. प्राण किसे कहते हैं ? प्राण के कितने भेद हैं ?

उत्तर : जिनके संयोग से जीव जीवित और वियोग से मृत कहलाता है, उन्हें प्राण कहते हैं। द्रव्यप्राण और भावप्राण के भेद से प्राण के दो भेद होते हैं। आत्मा के ज्ञान-दर्शन आदि गुणों को **भावप्राण** और इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास को **द्रव्यप्राण** कहते हैं।

५ इन्द्रिय, ३ बल, आयु और श्वासोच्छ्वास; इस प्रकार द्रव्यप्राण के १० भेद होते हैं।

७१. प्रश्न : एकेन्द्रिय आदि जीवों के कितने-कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर :

जीव	इन्द्रिय	बल	आयु	श्वासोच्छ्वास	कुल
एकेन्द्रिय	स्पर्शन	काय	"	"	४
द्वीन्द्रिय	स्पर्शन-रसना	काय-वचन	"	"	६
त्रीन्द्रिय	स्पर्शन-रसना घ्राण	काय-वचन	"	"	७
चतुरिन्द्रिय	स्पर्शन-रसना घ्राण-चक्षु	काय-वचन	"	"	८
असंज्ञी पंचेन्द्रिय	स्पर्शन-रसना घ्राण-चक्षु-कर्ण	काय-वचन	"	"	९
संज्ञी पंचेन्द्रिय	स्पर्शन-रसना घ्राण-चक्षु-कर्ण	काय-वचन मन	"	"	१०

अपर्याप्त अवस्था में वचन-मन बल और श्वासोच्छ्वास ये तीन प्राण नहीं होते हैं, अतः अपर्याप्तक एकेन्द्रिय आदि जीवों में क्रमशः ३, ४, ५, ६, ७ और ७ प्राण होते हैं।

७२. संज्ञा किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर : जिनसे संक्लेशित होकर जीव इस भव में और जिनके विषय का सेवन करने से जीव दोनों ही भवों में दारुण

दु:ख को प्राप्त होते हैं, उसे संज्ञा कहते हैं। **इसके चार भेद हैं**- १. आहार, २. भय, मैथुन और ४. परिग्रह।

७३. प्रश्न : आहार संज्ञा किसे कहते हैं ?

उत्तर : अन्तरंग में असातावेदनीय कर्म की उदीरणा होने से तथा बाह्य में आहार देखने से अथवा उस ओर उपयोग जाने से अथवा पेट खाली होने से जीव को जो आहार की इच्छा होती है उसे **आहार संज्ञा** कहते हैं।

७४. प्रश्न : भय संज्ञा किसे कहते हैं ?

उत्तर : अंतरंग में भय नोकषाय की उदीरणा होने से तथा बाह्य में भयोत्पादक वस्तु देखने से अथवा पहले देखे हुए भयंकर पदार्थ के स्मरणादि से अथवा शक्ति के हीन होने पर उस जीव के हृदय में जो भय उत्पन्न होता है, उसे **भय संज्ञा** कहते हैं।

७५. मैथुन संज्ञा किसे कहते हैं ?

उत्तर : अन्तरंग में वेद नोकषाय की उदीरणा होने से और बाह्य में कामोत्तेजक स्वादिष्ट और गरिष्ठ रसयुक्त पदार्थों का भोजन करने से अथवा कामकथा, नाटक आदि के सुनने से अथवा पहले के भुक्त विषयों का स्मरण करने से

अथवा कुशील पुरुषों की संगति से जीव के हृदय में जो कामवासना उत्पन्न होती है, उसे मैथुन संज्ञा कहते हैं।

७६. **प्रश्न : परिग्रह संज्ञा किसे कहते हैं ?**

उत्तर : अन्तरंग में लोभ कषाय की उदीरणा होने से और बाह्य में भोगोपभोग के साधनभूत पदार्थों को देखने से अथवा पहले के भुक्त पदार्थों का स्मरण या उनकी कथा सुनने से और ममत्व परिणामों से जीव के हृदय में जो परिग्रह-अर्जन-रक्षण संग्रह की बुद्धि होती है, उसे परिग्रह संज्ञा कहते हैं।

७७. **कौन-कौन सी संज्ञा किस-किस गुणस्थान तक होती है ?**

उत्तर : आहार संज्ञा छठे गुणस्थान तक, भय संज्ञा आठवें गुणस्थान तक, मैथुन संज्ञा नवम् गुणस्थान के सवेद भाग तक और परिग्रह संज्ञा दसवें गुणस्थान तक होती है। सातवें आदि गुणस्थानों में जो भय आदि तीन संज्ञाएँ बतलायी हैं, वे मात्र अन्तरंग उन-उन कर्मों के उदय की अपेक्षा बतलायी हैं, प्रवृत्ति की अपेक्षा नहीं।

७८. **प्रश्न : मार्गणा किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिनमें अथवा जिनके द्वारा जीवों की खोज की जावे, उन्हें मार्गणा कहते हैं।

७९. प्रश्न : मार्गणा के कितने भेद हैं ?

उत्तर : मार्गणा के चौदह भेद हैं- १. गति, २. इन्द्रिय, ३. काय, ४. योग, ५. वेद, ६ कषाय, ७. ज्ञान, ८. संयम, ९. दर्शन, १०. लश्या, ११. भव्यत्व, १२. सम्यक्त्व, १३. संज्ञी और १४. आहार।

८०. प्रश्न : सान्तर मार्गणा और निरन्तर मार्गणा किसे कहते हैं ? उनके कितने भेद हैं ?

उत्तर : जिनमें विच्छेद-अन्तर पड़ता है, उन्हें सान्तर मार्गणा कहते हैं। जिनमें विच्छेद-अन्तर नहीं पड़ता है, उन्हें निरन्तर मार्गणा कहते हैं। संसारी जीवों के उपर्युक्त १४ मार्गणाओं में से किसी का भी विच्छेद नहीं पड़ता है। वे सभी जीवों के सदा ही पायी जाती हैं, अतएव उनको निरन्तर मार्गणा कहते हैं।

सान्तर मार्गणा के ८ भेद हैं- १. उपशम सम्यक्त्व, २. सूक्ष्मसाम्पराय संयम, ३. आहारक काययोग, ४. आहारक मिश्रकाययोग, ५. वैक्रियिकमिश्रकाययोग, ६. लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, ७. सासादन सम्यक्त्व और ८. मिश्र। ये मार्गणायें सामान्य से निरन्तर में ही गर्भित हैं।

८१. प्रश्न : अन्तर-विच्छेद किसे कहते हैं ?

उत्तर : किसी भी विवक्षित गुणस्थान या मार्गणा स्थान को छोड़कर पुनः उसी को प्राप्त करने में जीव को बीच में जो समय लगता है उसको अन्तर विच्छेद या विरह कहते हैं।

८२. प्रश्न : नाना जीवों की अपेक्षा आठ सान्तर मार्गणाओं का उत्कृष्ट और जघन्य विरह-काल कितना है ?

उत्तर : नाना जीवों की अपेक्षा उपशम सम्यक्त्व का उत्कृष्ट विरह-काल सात दिन, सूक्ष्मसाम्पराय का छह महीना, आहारक काययोग और आहारक मिश्रकाययोग का पृथक्त्व वर्ष, वैक्रियिक मिश्र, काययोग का बारह मुहूर्त, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सासादन सम्यक्त्व और मिश्र का उत्कृष्ट विरह काल पल्य का असंख्यातवाँ भाग है। सान्तर मार्गणाओं का जघन्य विरह-काल एक समय है।

८३. प्रश्न : गति मार्गणा किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर : गति नामकर्म के उदय से प्राप्त हुई जीव की अवस्था विशेष को गति कहते हैं। गति के चार भेद हैं- १. नरकगति, २. तिर्यंचगति, ३. मनुष्यगति और ४. देवगति।

८४. प्रश्न : नरकगति का स्वरूप क्या है ?

उत्तर : जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में स्वयं तथा परस्पर प्रीति को प्राप्त नहीं होते, उनको नारक (नारकी) कहते हैं और उनकी गति को नारक-गति कहते हैं। नारकियों का निवास इस पृथिवी के नीचे सातों पृथिवियों में है, नारकी निरन्तर ही स्वाभाविक, शारीरिक, मानसिक, आगन्तुक तथा क्षेत्र जन्य इन पाँच प्रकार के दुःखों से दुःखी रहते हैं। बहुत आरम्भ, बहुत परिग्रह तथा रौद्र ध्यान के कारण जीव नरकायु का बन्ध कर इन पृथिवियों में उत्पन्न होते हैं।

८५. प्रश्न : तिर्यंचगति का स्वरूप क्या है ?

उत्तर : जो मन-वचन-काय की कुटिलता से युक्त हैं, जिनकी आहारादि विषयक संज्ञाएँ अत्यन्त स्पष्ट हैं, जो निकृष्ट अज्ञानी हैं और जिनमें अत्यन्त पाप का बाहुल्य पाया जाता है, उनको तिर्यंच कहते हैं और उनकी गति को तिर्यंचगति कहते हैं। इनके एकेन्द्रियादि पाँच भेद हैं। एकेन्द्रिय जीवों का समस्त लोक में निवास है, त्रसनाली में त्रस जीवों का निवास है, तथा उपपाद, मारणान्तिक समुद्घात और केवली-समुद्घात की अपेक्षा समस्त लोक

में भी निवास है। छल-कपट रूप प्रवृत्ति करने से एवं आर्त ध्यान के कारण जीव तिर्यंचगति में उत्पन्न होते हैं।

८६. प्रश्न : मनुष्यगति का स्वरूप क्या है ?

उत्तर : जो नित्य ही हेय-उपादेय, तत्त्व-अतत्त्व, आप्त-अनाप्त, धर्म-अधर्म आदि का विचार कर सके, जो मन के द्वारा गुणदोषादि का विचार एवं स्मरण आदि कर सकें, जो मन के विषय में उत्कृष्ट हों, शिल्पकला आदि में कुशल हों, तपश्चरण कर मोक्ष प्राप्त कर सकें तथा युग की आदि में जो मनुष्यों से उत्पन्न हों उन्हें मनुष्य कहते हैं और उनकी गति को मनुष्यगति कहते हैं। मनुष्यों का निवास ढाई द्वीप में है। मनुष्य के आर्य-खण्डज और म्लेच्छ-खण्डज की अपेक्षा दो भेद हैं। अल्प आरम्भ, अल्प परिग्रह तथा स्वभाव की सरलता से जीव मनुष्य गति में उत्पन्न होते हैं।

८७. प्रश्न : देवगति का स्वरूप क्या है ?

उत्तर : जो अणिमा, महिमा आदि आठ ऋद्धियों के द्वारा नाना द्वीप-समुद्रों में इच्छानुसार क्रीड़ा करते हैं और जिनका रूप, लावण्य, यौवन आदि सदा प्रकाशमान रहता है, उन्हें देव कहते हैं और उनकी गति को देवगति कहते हैं। इनके

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ये चार भेद हैं। भवनवासी और व्यन्तर देवों का निवास इस पृथिवी के नीचे स्थित रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग और पंक-भाग में है एवं मध्यलोक में भी है। ज्योतिषी देवों का निवास इस पृथ्वी से ७९० योजन की ऊँचाई से लेकर ९०० योजन की ऊँचाई तक है। वैमानिक देवों का निवास सोलह स्वर्ग, नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश तथा पाँच अनुत्तर विमानों में है। सरल परिणाम, धर्मध्यान तथा शुभोपयोग रूप भावों से जीव देवगति में उत्पन्न होते हैं।

सिद्ध परमेष्ठी चारों गतियों के चक्र से रहित होते हैं।

८८. **प्रश्न : तिर्यंचों और मनुष्यों के कितने भेद हैं ?**

उत्तर : सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त तिर्यंच, योनिनी तिर्यंच और अपर्याप्त तिर्यंच इस प्रकार तिर्यंचों के पाँच भेद हैं। सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, योनिनी मनुष्य और अपर्याप्त मनुष्य इस प्रकार मनुष्यों के चार भेद हैं।

८९. **प्रश्न : पर्याप्त मनुष्य और मानुषियों का कितना प्रमाण है ?**

उत्तर : ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ अर्थात् २९ अंक प्रमाण पर्याप्त मनुष्यों का प्रमाण है। पर्याप्त मनुष्यों का जितना प्रमाण है, उसमें ३/४ मानुषियों का प्रमाण है।

९०. प्रश्न : इन्द्रिय मार्गणा किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं और उनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर : एकेन्द्रियादि जाति नामकर्म के उदय से जीव की जो एकेन्द्रिय आदि अवस्था होती है, उसे इन्द्रिय मार्गणा कहते हैं। इन्द्र के सदृश अपने-अपने विषय में स्वतन्त्र होने से इन्द्रिय कहते हैं। या छद्मस्थ जीव जिनके माध्यम से पदार्थों को जानते हैं, उन्हें इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रिय के दो भेद हैं- (१) भावेन्द्रिय (२) द्रव्येन्द्रिय। लब्धि और उपयोग को **भावेन्द्रिय** कहते हैं। मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली अर्थग्रहण की शक्तिरूप विशुद्धि को **लब्धि** और उस विशुद्धि से अर्थ को ग्रहण करने रूप जो व्यापार होता है, उसको **उपयोग** कहते हैं। निर्वृत्ति और उपकरण को **द्रव्येन्द्रिय** कहते हैं। जीवविपाकी जाति नामकर्म के उदय के साथ-साथ शरीर नामकर्म के उदय से तत्तत् इन्द्रिय के आकार में जो आत्मप्रदेशों तथा आत्मसम्बद्ध शरीर-प्रदेशों की रचना होती है उसको **निर्वृत्ति** कहते हैं। निर्वृत्ति आदि की रक्षा में सहायक अवयव को **उपकरण** कहते हैं।

६१. प्रश्न : इन्द्रिय के और कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : इन्द्रिय के पाँच भेद भी होते हैं- (१) स्पर्शन (२) रसना (३) घ्राण (४) चक्षु और (५) कर्ण। इन्द्रिय के भेदों की अपेक्षा जाति नामकर्म के उदय से जीव का एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि जातियों में वर्गीकरण हुआ है। जिन जीवों के बाह्य चिह्न (द्रव्येन्द्रिय) और उसके द्वारा होने वाला स्पर्श, रस, गन्ध, रूप, शब्द इन विषयों का ज्ञान हो, उनको क्रमशः एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। तिर्यंच गति को छोड़कर शेष गतियों में पंचेन्द्रिय जीव ही होते हैं, परन्तु तिर्यंच गति में एकेन्द्रिय आदि सभी जीव होते हैं।

६१. प्रश्न : एकेन्द्रियादि जीवों की स्पर्शनादि इन्द्रियों का उत्कृष्ट विषय-क्षेत्र कितना है ?

उत्तर : एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के स्पर्शन आदि इन्द्रियों का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र इस प्रकार है :-

जीव	स्पर्शन	रसना	घ्राण	चक्षु	कर्ण
एकेन्द्रिय	४०० धनुष	-	-	-	-
द्वीन्द्रिय	८०० "	६४ धनुष	-	-	-
त्रीन्द्रिय	१६०० "	१२८ "	१०० ध०	-	-
चतुरिन्द्रिय	३२०० "	२५६ "	२०० "	२९५४ यो०	-
असंज्ञी) पंचेन्द्रिय)	६४०० "	५१२ "	४०० "	५९०८"	८००० धनुष
संज्ञी) पंचेन्द्रिय)	९ योजन	९ योजन	९ योजन	४७२६३^{२१} योजन	१२ योजन

९३. **प्रश्न : इन्द्रियों का आकार कैसा है ?**

उत्तर : चक्षु इन्द्रिय का आकार मसूर के समान, श्रोत्र इन्द्रिय का आकार यव-नाली के समान, घ्राण इन्द्रिय का आकार तिल के फूल समान, रसना इन्द्रिय का आकार खुरपा के समान और स्पर्शन इन्द्रिय का आकार अनेक प्रकार का है।

९४. **प्रश्न : एकेन्द्रियादि जीवों की संख्या का प्रमाण क्या है ?**

उत्तर : पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीव असंख्यातासंख्यात हैं। वनस्पतिकायिक जीव

अनन्तानन्त हैं। शंख आदि द्वीन्द्रिय जीव, चींटी आदि त्रीन्द्रिय जीव, भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव, मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय जीव 'असंख्यातासंख्यात हैं।

एकेन्द्रिय जीवों में एक भाग प्रमाण बादर जीव एवं बहुभाग प्रमाण सूक्ष्म जीव होते हैं।

बादर एकेन्द्रिय जीवों में एक भाग पर्याप्त जीव एवं बहुभाग प्रमाण अपर्याप्त जीव होते हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों में बहुभाग पर्याप्त जीव और एक भाग अपर्याप्त जीव पाये जाते हैं।

६५. प्रश्न : कायमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : जाति नामकर्म के अविनाभावी त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्याय विशेष को काय कहते हैं।

६६. प्रश्न : काय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ये पाँच स्थावरकाय तथा एक त्रसकाय इस प्रकार काय के छह भेद हैं।

९७. **प्रश्न : वनस्पतिकाय के कितने भेद हैं ? उनका स्वरूप क्या है ?**

उत्तर : वनस्पतिकाय के दो भेद हैं- (१) प्रत्येक और (२) साधारण। **प्रत्येक वनस्पतिः** जिसमें एक शरीर का स्वामी एक ही जीव होता है, उसे प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। **साधारण वनस्पतिः** जिन जीवों का शरीर साधारण नामकर्म के उदय के कारण निगोद रूप होता है, जहाँ एक शरीर में अनन्तानन्त जीव रहते हैं और जिनका आहार, श्वासोच्छ्वास, जीवन तथा मरण समान होता है उन्हें साधारण वनस्पति कहते हैं। इनके बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा दो भेद होते हैं। इतना विशेष है कि एक बादर निगोद शरीर में या एक सूक्ष्मनिगोद शरीर में साथ ही उत्पन्न होने वाले अनन्तानन्त साधारण जीव या तो पर्याप्तक ही होते हैं या अपर्याप्तक ही होते हैं किन्तु मिश्ररूप नहीं होते, क्योंकि उनके समान कर्मोदय का नियम है।

९८. **प्रश्न : प्रत्येक वनस्पति के कितने भेद हैं ?**

उत्तर : प्रत्येक वनस्पति के दो भेद हैं- (१) सप्रतिष्ठित प्रत्येक और (२) अप्रतिष्ठित प्रत्येक।

९९. प्रश्न : सप्रतिष्ठित प्रत्येक किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिनके आश्रय बादर निगोदिया जीव रहते हैं तथा जिनकी शिरा, सन्धि तथा पर्व आदि प्रकट न हुए हों, जिनका भंग करने पर समान भंग होता हो, तोड़ने पर जिनमें परस्पर तन्तु न लगे रहें एवं छेद करने पर भी जिनकी पुनः वृद्धि हो जावे और जिसकी स्कन्ध की छाल मोटी हो उनको सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं, इन्हें उपचार से साधारण वनस्पति भी कहते हैं।

१००. प्रश्न : सप्रतिष्ठित प्रत्येक और साधारण वनस्पति में क्या भेद है ?

उत्तर : सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के आश्रित रहने वाले बादर निगोदिया जीव अपने शरीर का स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। **साधारण वनस्पति** में रहने वाले अनन्तानन्त जीव अपने शरीर का स्वतन्त्र अस्तित्व न रखकर एक शरीर के ही स्वामी होते हैं।

१०१. प्रश्न : अप्रतिष्ठित प्रत्येक किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिनके आश्रय बादर निगोदिया जीव नहीं रहते हैं तथा जिनकी शिरा, संधि और पर्व आदि की रेखाएँ प्रकट हो चुकी हैं, तोड़ने पर जिनका समान भंग नहीं होता है एवं

छिन्न हो जाने पर जो फिर से उत्पन्न नहीं होती हैं और जिनकी स्कन्ध की छाल पतली होती है, उनको अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति अपनी उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सप्रतिष्ठित प्रत्येक ही रहती है।

१०२. प्रश्न : एक निगोद शरीर में द्रव्य की अपेक्षा जीवों का प्रमाण कितना है ?

उत्तर : समस्त सिद्धराशि का और सम्पूर्ण अतीत काल के समयों का जितना प्रमाण है, द्रव्य की अपेक्षा उनसे अनन्तगुणे जीव एक निगोद शरीर में रहते हैं।

१०३. प्रश्न : नित्य निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो आज तक निगोद पर्याय से नहीं निकले हैं, उन्हें नित्य निगोद कहते हैं। नित्य-निगोदिया जीवों का काल अनादि अनन्त और अनादि सान्त होता है, परन्तु इतर निगोदिया जीवों का काल सादि सान्त और सादि अनन्त होता है।

१०४. प्रश्न : इतर निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो निगोद से निकलकर तथा अन्य पर्यायों में भ्रमण कर पुनः निगोद में ही उत्पन्न होते हैं, उन्हें इतर निगोद कहते हैं।

१०५. प्रश्न : बादर निगोदिया जीव कहाँ-कहाँ नहीं रहते हैं ?

उत्तर : पृथिवी, जल, अग्नि और वायु इन चार स्थावरों में, आहारक शरीर, देव-नारकियों का शरीर और केवली भगवान का शरीर इन आठ स्थानों में बादर निगोदिया जीव नहीं रहते हैं।

१०६. प्रश्न : स्थावरकायिक और त्रसकायिक जीवों का कैसा आकार है ?

उत्तर : पृथिवीकायिक से वायुकायिक पर्यन्त जीवों का आकार क्रमशः मसूर, जल की बिन्दु, सुइयों का समूह और ध्वजा के सदृश है। वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीवों का आकार अनेक प्रकार का है।

१०७. प्रश्न : स्थावरकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु का कितना प्रमाण है ?

उत्तर : मृदु पृथिवीकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु १२,००० वर्ष, कठोर पृथिवीकायिक जीवों की २२,००० वर्ष, जलकायिक जीवों की ७,००० वर्ष, तेजकायिक जीवों की ३ दिन, वातकायिक जीवों की ३,००० वर्ष और वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु १०,००० वर्ष प्रमाण है।

१०८. प्रश्न : निगोदराशि से निकलकर त्रसराशि में रहने का काल अधिक से अधिक कितना है ?

उत्तर : त्रसराशि में रहने का अधिक से अधिक काल साधिक २,००० सागर वर्ष है।

१०९. प्रश्न : योग किसे कहते हैं ?

उत्तर : पुद्गलविपाकी शरीर नामकर्म के उदय से मन-वचन-काय से युक्त जीव की कर्म ग्रहण में कारण-भूत शक्ति को योग कहते हैं अर्थात् भावयोग कहते हैं। इस शक्ति के कारण आत्मप्रदेशों में जो परिस्पन्दन उत्पन्न होता है, उसे द्रव्ययोग कहते हैं।

११०. प्रश्न : योग के कितने भेद हैं ?

उत्तर : संक्षेप में योग के तीन भेद हैं-

(१) काययोग (२) वचनयोग और (३) मनोयोग।

विस्तार से काययोग के सात भेद हैं-

(१) औदारिक-मिश्र काययोग (२) औदारिक काययोग (३) वैक्रियिक मिश्र काययोग (४) वैक्रियिक काययोग (५) आहारक मिश्र काययोग (६) आहारक काययोग और (७) कार्मण काययोग।

वचनयोग के **चार** भेद हैं- (१) सत्य वचनयोग (२) असत्य वचनयोग (३) उभय वचनयोग और (४) अनुभय वचनयोग।

मनोयोग के चार भेद हैं- (१) सत्य मनोयोग (२) असत्य मनोयोग (३) उभय मनोयोग और (४) अनुभय मनोयोग।

इस प्रकार सब मिलाकर योग के १५ भेद हैं।

१११. प्रश्न : औदारिकमिश्र काययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर : विग्रहगति के बाद मनुष्य अथवा तिर्यंच गति में जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है तब तक अर्थात् अपर्याप्त अवस्था में इस जीव के कार्मण शरीर और औदारिक शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों का जो परिस्पन्दन होता है, उसे औदारिकमिश्र काययोग कहते हैं।

११२. प्रश्न : औदारिक काययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर : निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था के अन्तर्मुहूर्त बाद पर्याप्त हो जाने पर औदारिक शरीर के निमित्त से जो आत्मप्रदेशों का परिस्पन्दन होता है उसे औदारिक काययोग कहते हैं। मनुष्य और तिर्यंच को पूरे जीवन भर औदारिक काययोग

रहता है। यह विशेष है कि उस पर्याप्तक जीव के कभी मनोयोग भी होता है, कभी वचनयोग भी होता है।

११३. प्रश्न : वैक्रियिकमिश्र काययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर : विग्रहगति के बाद देवगति और नरक गति में अपर्याप्त अवस्था के अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त कार्मण शरीर और वैक्रियिक शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों का जो परिस्पन्दन होता है उसे वैक्रियिकमिश्र काययोग कहते हैं।

११४. प्रश्न : वैक्रियिक काययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर : पर्याप्त अवस्था में वैक्रियिक शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों में जो परिस्पन्दन होता है उसे वैक्रियिक काययोग कहते हैं। देव और नारकियों के पूरे जीवन भर वैक्रियिक काययोग रहता है। कभी-कभी वचनयोग और मनोयोग भी होता है।

११५. प्रश्न : आहारकमिश्र काययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर : छठे गुणस्थानवर्ती जिन मुनियों के असंयम का परिहार करने के लिए और सन्देह-निवारण हेतु मस्तक से जो श्वेत रंग का पुतला निकलने वाला है, उनके प्रथम

अन्तर्मुहूर्त में जब तक आहारक शरीर पर्याप्त नहीं होता है तब तक औदारिक शरीर और आहारक शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों में जो परिस्पन्दन होता है, उसे आहारकमिश्र काययोग कहते हैं।

११६. **प्रश्न : आहारक काययोग किसे कहते हैं ?**

उत्तर : छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के मस्तक से जो श्वेत रंग का पुतला निकलता है वह केवली के पास जाकर सूक्ष्म पदार्थों का आहरण-ग्रहण करता है, इसलिए इस आहारक शरीर के द्वारा आत्मप्रदेशों में जो परिस्पन्दन होता है, उसे आहारक काययोग कहते हैं।

११७. **प्रश्न : आहारक काययोगी और आहारकमिश्र काययोगी जीवों का कितना प्रमाण है ?**

उत्तर : एक समय में आहारक काययोग वाले जीव अधिक से अधिक ५४ होते हैं और आहारकमिश्र काययोग वाले जीव अधिक से अधिक २७ होते हैं।

११८. **प्रश्न : कार्माण काययोग किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जब यह जीव मरण कर नया शरीर प्राप्त करने के लिए विग्रहगति में जाता है तब कार्माण शरीर के निमित्त से

आत्मप्रदेशों का जो परिस्पन्दन होता है, उसे कार्माण काययोग कहते हैं। यह योग एक, दो अथवा तीन समय तक होता है।

११९. प्रश्न : शरीर के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : शरीर के पाँच भेद होते हैं- (१) औदारिक (२) वैक्रियिक (३) आहारक (४) तैजस और (५) कार्माण।

१२०. प्रश्न : औदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर : गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्म से जिसकी उत्पत्ति होती है ऐसे मनुष्य और तिर्यंचों के शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

१२१. प्रश्न : वैक्रियिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर : उपपाद जन्म से जिसकी उत्पत्ति होती है, ऐसे देव और नारकियों के शरीर को वैक्रियिक शरीर कहते हैं।

१२२. प्रश्न : आहारक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर : छटे गुणस्थानवर्ती मुनि के तपश्चरण के निमित्त से होने वाली आहारक ऋद्धि के फलस्वरूप तीर्थंकरों के दीक्षा कल्याणक आदि एवं जिन, जिनगृह, चैत्य-चैत्यालयों की वन्दना के लिए अर्थात् असंयम का परिहार करने के लिए

एवं सन्देह- निवारण के लिए मस्तक से धातु एवं संहनन से रहित, समचतुरस्र संस्थान युक्त एक हाथ का सफेद रंग का जो पुतला निकलता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं।

१२३. प्रश्न : तैजस और कार्माण शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके निमित्त से औदारिक आदि शरीरों में विशिष्ट प्रकार का तेज होता है, उसे तैजस शरीर कहते हैं।

कर्मों के समूह को कार्माण शरीर कहते हैं।

१२४. प्रश्न : देवों और नारकियों के शरीरों के अतिरिक्त किन-किन शरीरों में विक्रिया हो सकती है ?

उत्तर : बादर तेजस्कायिक और वायुकायिक तथा संज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच एवं मनुष्य तथा भोगभूमिज तिर्यंच और मनुष्य अपने औदारिक शरीर के द्वारा अपृथक् विक्रिया कर सकते हैं परन्तु भोगभूमिज तिर्यंच और मनुष्य तथा चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया भी कर सकते हैं।

१२५. प्रश्न : तैजस शरीर के कितने भेद हैं ?

उत्तर : तैजस शरीर के दो भेद हैं- (१) निस्सरणात्मक और (२) - अनिस्सरणात्मक; निस्सरण तैजस शरीर छठे गुणस्थानवर्ती

ऋद्धिधारक मुनि के होता है। अनिस्सरण तैजस समस्त संसारियों के होता है।

१२६. प्रश्न : कर्म और नोकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तैजस नामकर्म के उदय से होने वाले चार शरीरों को **नोकर्म** कहते हैं। कार्माण शरीर नामकर्म के उदय से होने वाले ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों के समूह को कार्माण शरीर अर्थात् कर्म कहते हैं।

१२७. प्रश्न : विस्रसोपचय किसे कहते हैं ?

उत्तर : सम्पूर्ण आत्मप्रदेशों के साथ जो कर्म और नोकर्म बँधे हैं, उन कर्म और नोकर्म के प्रत्येक परमाणु के साथ जीवराशि से अनन्तानन्तगुणे विस्रसोपचयरूप परमाणु भी सम्बद्ध हैं, जो कर्मरूप या नोकर्मरूप तो नहीं हैं, किन्तु कर्मरूप या नोकर्मरूप होने के लिए उम्मीदवार हैं, उन परमाणुओं को **विस्रसोपचय** कहते हैं।

१२८. प्रश्न : औदारिकादि शरीरों का उत्कृष्ट संचय कहाँ होता है ?

उत्तर : **औदारिक शरीर** का उत्कृष्ट संचय तीन पल्य की स्थिति वाले देवकुरु और उत्तरकुरु में उत्पन्न मनुष्य तथा तिर्यंच के आयु के अन्तिम और उपान्त्य समय में होता है। **वैक्रियिक शरीर** का उत्कृष्ट संचय बाइस सागर की आयु

वाले आरण और अच्युत स्वर्ग के ऊपर के विमानों में रहने वाले देवों के होता है। **आहारक शरीर** का उत्कृष्ट संचय आहारक शरीर का उत्थान करने वाले प्रमत्तविरत के होता है। **तैजस शरीर** का उत्कृष्ट संचय सप्तम् पृथिवी में दूसरी बार उत्पन्न होने वाले जीव के होता है। **कार्माण शरीर** का उत्कृष्ट संचय अनेक बार नरकों में भ्रमण करके सप्तम् पृथिवी में उत्पन्न होने वाले जीव के होता है।

१२९. प्रश्न : कर्मों का उत्कृष्ट संचय करने में क्या-क्या कारण हैं ?

उत्तर : कर्मों का उत्कृष्ट संचय करने में छह आवश्यक कारण होते हैं। (१) भवाद्धा (२) आयुष्य (३) योग (४) संक्लेश (५) अपकर्षण और (६) उत्कर्षण।

१३०. प्रश्न : भवाद्धा किसे कहते हैं ?

उत्तर : भव-पर्याय सम्बन्धी काल (स्थिति) को भवाद्धा कहते हैं।

१३१. प्रश्न : अपकर्षण किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्मप्रदेशों की स्थिति और अनुभाग के अपवर्तन अर्थात् घटने को अपकर्षण कहते हैं।

१३२. प्रश्न : उत्कर्षण किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्मप्रदेशों की स्थिति और अनुभाग की वृद्धि को उत्कर्षण कहते हैं।

१३३. प्रश्न : कार्माण काययोग किस-किस गुणस्थान में होता है ?

उत्तर : विग्रहगति की अपेक्षा कार्माण काययोग पहले, दूसरे और चौथे गुणस्थान में होता है तथा केवली समुद्घात की अपेक्षा कार्माण काययोग प्रतर और लोकपूरण अवस्था में होता है।

१३४. प्रश्न : वचनयोग और मनोयोग के चार भेदों का स्वरूप क्या है ?

उत्तर : पदार्थ को कहने या विचारने के लिए जीव की सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रूप चार प्रकार से वचन और मन की जो प्रवृत्ति होती है, उसे क्रम से सत्य वचनयोग तथा सत्य मनोयोग आदि कहते हैं।

सम्यग्ज्ञान के विषयभूत पदार्थ को सत्य कहते हैं, जैसे 'यह जल है'। मिथ्याज्ञान के विषयभूत पदार्थ को असत्य कहते हैं, जैसे 'मृगमरीचिका' को जल कहना। दोनों के विषयभूत पदार्थ को उभय कहते हैं, जैसे 'कमण्डलु को

घट कहना क्योंकि कमण्डलु घट का काम देता है, इसलिए कथंचित् सत्य है और घटाकार नहीं है, इसलिए कथंचित् असत्य है। जो दोनों ही ज्ञान का विषय नहीं होता है ऐसे पदार्थ को अनुभय कहते हैं, जैसे सामान्य रूप से यह प्रतिभास होना कि 'यह कुछ है'। यहाँ पर सत्य-असत्य का कुछ भी निर्णय नहीं हो सकता, इसलिए अनुभय है।

१३५. प्रश्न : अनुभयवचन के कितने भेद हैं ?

उत्तर : अनुभयवचन के नौ भेद हैं- (१) **आमन्त्रणी**- हे देवदत्त! यहाँ आओ, (२) **आज्ञापनी**- यह काम करो, (३) **याचनी**- यह मुझको दो, (४) **आपृच्छनी**- यह क्या है ? (५) **प्रज्ञापनी**- मैं क्या करूँ इस तरह के सूचना वाक्य, (६) **प्रत्याख्यानी**- इसे छोड़ता हूँ, (७) **संशयवचनी**- यह बलाका है अथवा पताका, (८) **इच्छानुलोम्नी**- मुझे भी ऐसा ही होना चाहिए, ऐसी इच्छा प्रकट करने वाले वचन, (९) **अनक्षरात्मक**- द्वीन्द्रियादिक असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों की भाषा अनक्षरात्मक होती है। ये नौ प्रकार के वचन सुनने से व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही अंशों का बोध होता है, क्योंकि सामान्य अंश के व्यक्त होने से इन्हें असत्य भी नहीं कह सकते और विशेष अंश के व्यक्त न

होने से इन्हें सत्य भी नहीं कह सकते हैं, इसलिए इन्हें अनुभय वचन कहते हैं।

१३६. प्रश्न : वेद किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं और उसका स्वरूप क्या है ?

उत्तर : वेद नोकषाय के उदय तथा उदीरणा होने से जीव के परिणामों में बड़ा भारी मोह उत्पन्न होता है उसे वेद कहते हैं। मोह के कारण जीव गुण और दोष का विचार नहीं करता है। वेद के दो भेद हैं- (१) भाववेद और द्रव्यवेद। **भाववेद :** अन्तरंग में पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के उदय से जो रमण की इच्छा होती है, उसे भाववेद कहते हैं। **द्रव्यवेद :** अंगोपांग नामकर्म के उदय से जो शरीर की रचना होती है, उसे द्रव्यवेद कहते हैं।

वेद के तीन भेद भी हैं-

(१) पुरुषवेद (२) स्त्रीवेद और (३) नपुंसकवेद।

नारकियों में नपुंसकवेद, देवों में स्त्रीवेद एवं पुरुषवेद तथा शेष जीवों में तीनों वेद होते हैं। देव-नारकी में द्रव्यवेद और भाववेद की समानता रहती है परन्तु कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यंचों में कहीं विषमता भी पायी जाती है

अर्थात् द्रव्यवेद कुछ होता है और भाववेद कुछ होता है।[1] पुरुषवेद की बाधा तृण की आग के समान, स्त्रीवेद की बाधा कारीष (कंडे) की आग के समान और नपुंसकवेद की बाधा ईंट पकाने के आँवाँ की आग के समान होती है।

१३७. प्रश्न : वेद का सद्भाव कहाँ तक रहता है ?

उत्तर : द्रव्यवेद की अपेक्षा स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का सद्भाव पाँचवें गुणस्थान तक तथा पुरुषवेद का सद्भाव चौदहवें गुणस्थान तक होता है। भाववेद की अपेक्षा तीनों वेदों का सद्भाव नवम् गुणस्थान के पूर्वार्थ तक रहता है। इसके आगे के जीव वेदरहित होते हैं।

१३८. प्रश्न : कषाय किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर : जो आत्मा के सम्यक्त्वादि गुणों का घात करे, उसे कषाय कहते हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, प्रत्याख्यानावरण, क्रोध-मान-माया-लोभ, संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ और हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्रीवेद-पुरुषवेद एवं नपुंसकवेद, ये कषाय के २५ भेद हैं। उदयस्थानों की अपेक्षा कषाय के असंख्यात लोकप्रमाण भेद भी हैं।

---

१. जिस जीव के जिस-किसी विवक्षित पर्याय में जो भाववेद प्राप्त हुआ है, वही भाववेद जीवन भर तक रहता है, बदलता नहीं है। धवला १/३४८

१३९. प्रश्न : अनन्तानुबन्धी कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर : अनन्त संसार का कारण होने से मिथ्यात्व को अनन्त कहते हैं, इस अनन्त के साथ जिसका अनुबन्ध हो अर्थात् जो आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात करे उसे अनन्तानुबन्धी कषाय कहते हैं ?[1]

१४०. प्रश्न : अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो कषाय एकदेशचारित्र को घाते उसे **अप्रत्याख्यानावरण कषाय** कहते हैं। जो कषाय सकल-चारित्र को घाते उसे **प्रत्याख्यानावरण कषाय** कहते हैं। जो कषाय यथाख्यात चारित्र को घाते उसे **संज्वलन कषाय** कहते हैं।

---

१. अनन्तानुबन्धी को सम्यक्त्व के साथ-साथ चारित्र का भी घातक कहा है (धवल १/१६४, पंचाध्यायी उत्तरार्ध ११४०) वह भी ठीक ही है। बात यह है कि अनन्तानुबन्धी कषाय का कार्य अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों का अनन्त प्रवाह बनाये रखना है। वह (अनन्तानुबन्धी) स्वयं किसी चारित्र को नहीं घातती। (धवल पु. ६ पृ. ४२)। चारित्र में अनन्तानुबन्धी चतुष्क का व्यापार निष्फल भी नहीं है, क्योंकि चारित्र की घातक अप्रत्याख्यानावरणादि के अनन्त उदय रूप प्रवाह के कारणभूत अनन्तानुबन्धी कषाय के निष्फलत्व का विरोध है (धवल ६/४३); इस प्रकार अनन्तानुबन्धी की द्विस्वभावता सिद्ध होती है।

१४१. प्रश्न : शक्ति की अपेक्षा क्रोधादि कषायों के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : शक्ति की अपेक्षा क्रोधादि कषायों के चार-चार भेद होते हैं।

(तालिका पृष्ठ ७० पर देखें)

१४२. प्रश्न : नोकषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिनका उदय क्रोधादि कषायों की अपेक्षा न्यून होता है, उन्हें नोकषाय (किंचित् कषाय) कहते हैं। इनके नौ भेद हैं- (१) हास्य, (२) रति, (३) अरति, (४) शोक, (५) भय, (६) जुगुप्सा, (७) पुरुषवेद (८) स्त्रीवेद और (९) नपुंसकवेद।

१४३. प्रश्न : किस कषाय का उदय किस गुणस्थान तक होता है ?

उत्तर : अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय दूसरे गुणस्थान तक, अप्रत्याख्यानावरण का उदय चौथे गुणस्थान तक, प्रत्याख्यानावरण का उदय पाँचवें गुणस्थान तक और संज्वलन का उदय दसवें गुणस्थान तक होता है। हास्यादि छह नोकषायों का उदय आठवें गुणस्थान तक और तीनों

शक्ति की अपेक्षा कषायों के भेद

	अनन्तानुबन्धी	अप्रत्याख्यान	प्रत्याख्यान	संज्वलन
क्रोध	पत्थर पर खींची गयी रेखा के समान	पृथिवी पर खींची गयी रेखा के समान	धूलि पर खींची गयी रेखा के समान	जल पर खींची गयी रेखा के समान
मान	पत्थर के समान	हड्डी के समान	काष्ठ के समान	बेंत के समान
माया	बाँस की जड़ के समान	मेढ़े के सींग के समान	गोमूत्र के समान	खुरपा के समान
लोभ	क्रिमिराग के समान	चक्रमल के समान	शरीरमल के समान	हल्दीरंग के समान
फल	नरकगति	तिर्यंचगति	मनुष्यगति	देवगति

वेदों का उदय नवम् गुणस्थान के सवेद भाग तक रहता है। ग्यारहवें गुणस्थान से कषायरहित अवस्था है।

१४४. प्रश्न : ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके द्वारा जीव त्रिकालविषयक द्रव्य, गुण और उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को जाने उसे **ज्ञान** कहते हैं।

१४५. प्रश्न : ज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर : ज्ञान के पाँच भेद हैं- (१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान और (५) केवलज्ञान। मति और श्रुतज्ञान परोक्षज्ञान हैं, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान देशप्रत्यक्ष हैं तथा केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है। मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ये चार ज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान हैं और केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है।

१४६. प्रश्न : मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : इन्द्रिय और मन की सहायता से अभिमुख (योग्य क्षेत्र में अवस्थित) और नियत (अपनी-अपनी इन्द्रिय का नियत विषय, जैसे चक्षु का रूप) पदार्थ का जो ज्ञान होता है, उसे आभिनिबोधिक अर्थात् मतिज्ञान कहते हैं।

१४७. **प्रश्न : मतिज्ञान के कितने भेद हैं ? उनका स्वरूप क्या है ?**

उत्तर : मतिज्ञान के चार भेद हैं १. **अवग्रह :** पदार्थ और इन्द्रियों का योग्य क्षेत्र में अवस्थानरूप सम्बन्ध होने पर सामान्य अवलोकन रूप दर्शन होता है और इसके अनन्तर विशेष आकार आदिक को ग्रहण करने वाला अवग्रह ज्ञान होता है। जैसे 'यह मनुष्य है।' अवग्रह के दो भेद हैं-

(अ) **व्यंजनावग्रह :** इन्द्रियों से प्राप्त-संबद्ध और अव्यक्त अर्थ को व्यंजन कहते हैं अर्थात् इन्द्रियों से सम्बद्ध होने पर भी जब तक प्रकट न होवे, उसे व्यंजन कहते हैं और इनके ज्ञान को व्यंजनावग्रह कहते हैं। यह ज्ञान चक्षुइन्द्रिय और मन को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों से होता है। जैसे श्रोत्रादिक के द्वारा प्रथम शब्दादिक के अव्यक्त ग्रहण को व्यंजनावग्रह कहते हैं। (आ) **अर्थावग्रह :** जो अप्राप्तअसम्बद्ध अर्थ के विषय में होता है उसे अर्थावग्रह कहते हैं, जो व्यंजनावग्रह के बाद होता है- जैसे श्रोत्रादिक के द्वारा शब्दादिक को प्रकट रूप से ग्रहण करना। यह ज्ञान पाँचों इन्द्रियों और मन से होता है।

(२) **ईहा** : अवग्रह के द्वारा जाने हुए पदार्थ को विशिष्ट रूप से जानने की चेष्टा होना ईहा ज्ञान है। जैसे यह मनुष्य दाक्षिणात्य होना चाहिए।

(३) **अवाय** : ईहा ज्ञान के द्वारा जाने हुए पदार्थ का निर्णयात्मक ज्ञान होना अवाय कहलाता है। जैसे "मनुष्य दाक्षिणात्य ही है।"

(४) **धारणा** : अवाय के द्वारा जाने हुए पदार्थ को कालान्तर में न भूलने वाले ज्ञान को धारणा कहते हैं। जैसे-मैंने दाक्षिणात्य मनुष्य को देखा था।

अस्पष्ट- प्राप्त या व्यंजन पदार्थ का सिर्फ अवग्रह ज्ञान होता है। स्पष्ट पदार्थ के चारों ज्ञान होते हैं।

१४८. प्रश्न : मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ की अपेक्षा कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ की अपेक्षा बारह भेद हैं।

(१) **बहु** : एक जाति के बहुत पदार्थों को बहु कहते हैं। जैसे- गेहूँ की राशि का ज्ञान। (२) **बहुविध** : अनेक जाति के बहुत पदार्थों को बहुविध कहते हैं। जैसे- गेहूँ, चना, चावल आदि की राशियों का ज्ञान। (३) **अल्प** : एक जाति के एक, दो पदार्थ को अल्प कहते हैं। जैसे-

गेहूँ आदि का ज्ञान। (४) **अल्पविध** : अनेक जाति के एक, दो पदार्थ को अल्पविध कहते हैं। जैसे- एक गेहूँ, चना, चावल आदि का ज्ञान। (५) **क्षिप्र** : शीघ्र पदार्थ को क्षिप्र कहते हैं, जैसे- तेजी से बहता हुआ जलप्रवाह। (६) **अक्षिप्र** : मन्द गति से चलने वाले पदार्थ को अक्षिप्र कहते हैं। जैसे- कछुआ की चाल आदि। (७) **अनिःसृत** : वस्तु के एकदेश को देखकर समस्त वस्तु के ज्ञान को अनिःसृत कहते हैं। जैसे जल में डूबे हुए हाथी की सूंड देखकर पूरे हाथी का ज्ञान होना। वस्तु के एकदेश या पूर्ण वस्तु का ग्रहण करके उसके निमित्त से किसी दूसरी वस्तु के ज्ञान को भी अनिःसृत कहते हैं। जैसे- मुख को देखकर चन्द्रमा का ज्ञान होना। (८) **निःसृत** : प्रकट पदार्थ को निःसृत कहते हैं। जैसे सामने खड़ा हुआ हस्ती। (९) **अनुक्त** : जो पदार्थ अभिप्राय से समझा जाय उसे अनुक्त कहते हैं जैसे- मुँह की सूरत तथा हाथ आदि के इशारे से प्यासे मनुष्य का ज्ञान। (१०) **उक्त** : जो शब्द के द्वारा कहा जाय उसे उक्त कहते हैं। (११) **ध्रुव** : स्थिर पदार्थ को ध्रुव कहते हैं। जैसे पर्वत आदि। (१२) **अध्रुव** : क्षणस्थायी पदार्थ को अध्रुव कहते हैं। जैसे-बिजली आदि।

व्यंजनावग्रह के ४ भेद (चक्षु और मन को छोड़कर ४ इंद्रियों की अपेक्षा) और अर्थावग्रह के (६X४) = २४ भेद (पाँच इन्द्रियाँ और मन ये छह और अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा) इस प्रकार उक्त बारह प्रकार के पदार्थों में २८ भेदों की प्रवृत्ति होती है तो २८X१२ = ३३६ मतिज्ञान के भेद होते हैं।

१४६. प्रश्न : श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : मतिज्ञान के द्वारा जाने हुए पदार्थ का अवलम्बन लेकर उससे भिन्न पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। मतिज्ञानपूर्वक ही श्रुतज्ञान होता है। श्रुतज्ञान के दो भेद हैं- (१) अक्षरात्मक और (२) अनक्षरात्मक। अक्षरात्मक अर्थात् शब्दजन्य श्रुतज्ञान मुख्य है, क्योंकि उपदेश शास्त्राध्ययन, ध्यान आदि की अपेक्षा मोक्षमार्ग में तथा लेनदेन आदि समस्त लोक-व्यवहार में शब्द और तज्जन्य बोध की मुख्यता है। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों के पाया जाता है, परन्तु यह लोक-व्यवहार में और मोक्षमार्ग में उपयोगी नहीं है।

१५०. प्रश्न : अनक्षरात्मक और अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का कितना प्रमाण है ?

उत्तर : अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, अनन्तगुणवृद्धि इन षट्स्थानपतित वृद्धि की अपेक्षा से पर्याय, पर्यायसमासरूप अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के सबसे जघन्य स्थान से लेकर उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त असंख्यात लोक प्रमाण भेद होते हैं।

द्विरूपवर्गधारा में छटे वर्ग का जितना प्रमाण है अर्थात् एकट्ठी प्रमाण उसमें से एक कम करने से जितना प्रमाण बाकी रहे, उतना ही अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का प्रमाण है।

१५१. प्रश्न : विस्तार से श्रुतज्ञान के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : श्रुतज्ञान के बीस भेद होते हैं–

(१) पर्याय, (२) पर्यायसमास, (३) अक्षर, (४) अक्षर-समास, (५) पद, (६) पदसमास, (७) संघात, (८) संघातसमास, (९) प्रतिपत्तिक, (१०) प्रतिपत्तिक समास, (११) अनुयोग, (१२) अनुयोगसमास, (१३) प्राभृतप्राभृत, (१४) प्राभृतप्राभृतसमास, (१५) प्राभृत, (१६) प्राभृतसमास, (१७) वस्तु, (१८) वस्तुसमास, (१९) पूर्व और (२०) पूर्वसमास।

१५२. **प्रश्न : पर्यायज्ञान का क्या स्वरूप है ? उनके स्वामी कौन हैं ?**

उत्तर : सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के एक अन्तर्मुहूर्त में अधिक से अधिक ६०१२ भव सम्भव हैं। उनमें भ्रमण करके अन्त के अपर्याप्त शरीर को तीन मोड़ों के द्वारा ग्रहण करने वाले जीव के प्रथम मोड़ा के समय में स्पर्शन इन्द्रियजन्य मतिज्ञानपूर्वक लब्ध्यक्षररूप सबसे जघन्य ज्ञान होता है, उसको पर्यायज्ञान कहते हैं। इसमें विशेषता केवल यही है कि इसके आवरण करने वाले कर्म के उदय का फल इस पर्यायज्ञान में नहीं होता क्योंकि यदि पर्यायावरण कर्म का फल पर्यायज्ञान हो जाय तो ज्ञानोपयोग का अभाव होने से जीव का भी अभाव हो जाता है परन्तु कम-से-कम पर्यायरूप ज्ञान जीव के अवश्य पाया जाता है। इससे यह ज्ञान निरावरण होता है क्योंकि इसे घातने वाले पर्याय नामक श्रुतज्ञानावरण का प्रभाव पर्यायसमास ज्ञान पर पड़ता है, पर्याय नामक ज्ञान पर नहीं पड़ता है।

१५३. **प्रश्न : अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं ?**

उत्तर : अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के दो भेद हैं- (१) अंगप्रविष्ट और (२) अंगबाह्य। अंगप्रविष्ट के बारह भेद हैं- (१) आचारांग,

२. सूत्रकृतांग, ३. स्थानांग, ४. समवायांग, ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग, ६. धर्मकथांग, ७. उपासकाध्ययनांग, ८. अन्तःकृद्दशांग, ९. अनुत्तरोपपादिकदशांग, १०. प्रश्न-व्याकरणांग, ११. विपाकसूत्रांग और १२. दृष्टिवादांग।

दृष्टिवादांग के पाँच भेद हैं- (१) परिकर्म, (२) सूत्र, (३) प्रथमानुयोग (४) पूर्वगत और (५) चूलिका। **परिकर्म** के पाँच भेद हैं- (१) चन्द्रप्रज्ञप्ति, (२) सूर्य-प्रज्ञप्ति, (३) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (४) द्वीप-सागरप्रज्ञप्ति और (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति; **पूर्वगत** के चौदह भेद हैं- (१) उत्पादपूर्व, (२) आग्रायणीयपूर्व, (३) वीर्यप्रवाद, (४) अस्तिनास्तिप्रवाद, (५) ज्ञानप्रवाद, (६) सत्यप्रवाद (७) आत्मप्रवाद, (८) कर्मप्रवाद, (९) प्रत्याख्यान (१०) वीर्यानुवाद (११) कल्याणवाद, (१२) प्राणावाद, (१३) क्रियाविशाल और (१४) त्रिलोक-बिन्दुसार।

चूलिका के पाँच भेद हैं- (१) जलगता, (२) स्थलगता, (३) मायागता, (४) आकाशगता और (५) रूपगता।

अंगबाह्य श्रुतज्ञान के चौदह भेद हैं- (१) सामायिक,

(२) चतुर्विंशति स्तव, (३) वन्दना, (४) प्रतिक्रमण (५) वैनयिक (६) कृतिकर्म (७) दशवैकालिक, (८) उत्तराध्ययन, (९) कल्प व्यवहार, (१०) कल्पाकल्प्य, (११) महाकल्प, (१२) पुण्डरीक, (१३) महापुण्डरीक और (१४) निषिद्धिका।

१५४. प्रश्न : श्रुतज्ञान के अपुनरुक्त अक्षर कितने हैं ?

उत्तर : मूल में २७ स्वर, ३३ व्यंजन और ४ योगवाह (अनुस्वार, विसर्ग जिह्वमूलीय और उपध्मानीय) इस प्रकार ६४ मूलवर्ण हैं। इनके संयोगी भंग ६४ जगह दुआ मांडकर परस्पर गुणा करने से एक कम एकट्ठी प्रमाण अर्थात् १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ इतने अंगप्रविष्ट और अंग-बाह्य श्रुत के समस्त अपुनरुक्त अक्षर हैं।

१५५. प्रश्न : एक पद में कितने अक्षर होते हैं ? द्वादशांग के समस्त पद कितने हैं ?

उत्तर : एक पद में सोलह सौ चौंतीस करोड़ तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी अक्षर होते हैं- (१६३४,८३,७८८८) यह मध्यम पद के अक्षरों का प्रमाण है। द्वादशांग के समस्त पद एक सौ बारह करोड़ बयासी लाख अट्ठावन हजार पाँच (११२,८२,५८,००५) हैं।

१५६. प्रश्न : अंगबाह्य के अक्षरों का प्रमाण क्या है ?

उत्तर : अंगबाह्य के अक्षरों का प्रमाण आठ करोड़ एक लाख, आठ हजार एक सौ पचहत्तर (८,०१,०८,१७५) है। इतने अक्षरों से एक आगम पद नहीं बनता है, अतः इसे **अंगबाह्य** कहते हैं।

१५७. प्रश्न : अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा जिसके विषय की सीमा हो उसे अवधिज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान का धारक जीव इन्द्रियों तथा प्रकाश आदि की सहायता के बिना ही अपने विषयक्षेत्र में स्थितरूपी पदार्थ को जानता है।

१५८. प्रश्न : अवधिज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर : अवधिज्ञान के दो भेद हैं– १. **भवप्रत्यय :** जो भव के निमित्त से होता है, उसे भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान देव, नारकी और तीर्थंकर के होता है तथा सर्वांग से उत्पन्न होता है। २. **गुण-प्रत्यय :** जो सम्यग्दर्शन और तपश्चरणादि गुणों के निमित्त से होता है, उसे गुणप्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान किन्हीं पर्याप्त मनुष्यों तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के होता है सबके नहीं

होता है। इसी को क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान भी कहते हैं। यह ज्ञान शंखादि चिह्नों से उत्पन्न होता है।

१५९. **प्रश्न : गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के कितने भेद हैं ?**

उत्तर : गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के छह भेद होते हैं- **१. अनुगामी :** जो अवधिज्ञान अपने स्वामी (जीव) के साथ जाय उसे अनुगामी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं (क) जो दूसरे क्षेत्र में अपनी स्वामी के साथ जाय उसे **क्षेत्रानुगामी** कहते हैं। (ख) जो दूसरे भव में साथ जाय उसे **भवानुगामी** कहते हैं। (ग) जो दूसरे क्षेत्र तथा भव दोनों में साथ जाय उसे **उभयानुगामी** कहते हैं। **२. अननुगामी :** जो अपने स्वामी (जीव) के साथ न जाय उसे अननुगामी कहते हैं। इसके भी तीन भेद हैं- (क) क्षेत्राननुगामी (ख) भवाननुगामी और (ग) उभयाननुगामी। (३) **वर्धमान :** जो शुक्लपक्ष के चन्द्र की तरह अपने अन्तिम स्थान तक बढ़ता जाय उसे वर्धमान अवधिज्ञान कहते हैं। (४) **हीयमान :** जो कृष्ण पक्ष के चन्द्र की तरह अन्तिम स्थान तक घटता जाय उसे हीयमान कहते हैं। (५) **अवस्थित :** जो सूर्यमण्डल के समान न घटे, न बढ़े उसे अवस्थित कहते हैं। (६) **अनवस्थित :** जो चन्द्र-मण्डल की तरह कभी कम हो, कभी अधिक हो उसे अनवस्थित कहते हैं।

१६०. प्रश्न : अन्य प्रकार से अवधिज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर : अवधिज्ञान के तीन भेद हैं- (१) देशावधि, (२) परमावधि और (३) सर्वावधि। देशावधि ज्ञान चारों गतियों में हो सकता है, परन्तु परमावधि और सर्वावधि ज्ञान मनुष्य गति में चरमशरीरी मुनियों के ही होता है, अन्य के नहीं। देशावधिज्ञान प्रतिपाती है, होकर छूट जाता है परन्तु परमावधि और सर्वावधि अप्रतिपाती है-केवलज्ञान होने के पहले नहीं छूटता है। देशावधिज्ञान भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय दोनों तरह का होता है। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि ही होता है। जघन्य देशावधिज्ञान संयत तथा असंयत दोनों ही प्रकार के मनुष्यों तथा देश-संयमी संयतासंयत तिर्यंचों के होता है। उत्कृष्ट देशावधिज्ञान संयत जीवों के ही होता है।

१६१. प्रश्न : जघन्य देशावधि का द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की अपेक्षा कितना विषय है ?

उत्तर : मध्यम योग के द्वारा संचित विस्रसोपचय सहित नोकर्म वर्गणा के संचय में लोक का भाग देने से जो द्रव्य लब्ध प्राप्त हो, उतने द्रव्य को जघन्य देशावधिज्ञान जानता है। इससे छोटे स्कन्ध को वह ग्रहण नहीं कर सकता है। क्षेत्र

की अपेक्षा सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के तृतीय समय में जो जघन्य अवगाहना होती है, उतने प्रमाण क्षेत्र को जानता है। **काल की अपेक्षा,** आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण भूत-भविष्यत् सम्बन्धी द्रव्य की व्यंजन-पर्यायों को जानता है। **भाव की अपेक्षा** जितनी पर्यायों को काल की अपेक्षा जानता है उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्तमान काल की पर्यायों को जानता है।

१६२. प्रश्न : उत्कृष्ट देशावधिज्ञान का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा कितना विषय है ?

उत्तर : कार्मणवर्गणा में एक बार ध्रुवहार का भाग देने से जो लब्ध प्राप्त हो उतने सूक्ष्म द्रव्य को उत्कृष्ट देशावधिज्ञान जानता है। **क्षेत्र की अपेक्षा** सम्पूर्ण लोक को जानता है। **काल की अपेक्षा** एक समय कम एक पल्य की बात को जानता है। **भाव की अपेक्षा** असंख्यात लोकप्रमाण द्रव्य की पर्यायों को जानता है।

१६३. प्रश्न : जघन्य परमावधि ज्ञान का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा कितना विषय है ?

उत्तर : देशावधि का जो उत्कृष्ट द्रव्यप्रमाण है, उसमें एक बार ध्रुवहार का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतना ही

परमावधि के जघन्य द्रव्य का प्रमाण है। देशावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र को असंख्यात (आवली के असंख्यातवें भाग) से गुणा करने पर परमावधि का जघन्य क्षेत्र प्रमाण प्राप्त होता है। उत्कृष्ट देशावधि के काल को असंख्यात से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो, तत्प्रमाण परमावधि का जघन्य काल होता है। उत्कृष्ट देशावधि के भाव का जो प्रमाण है उसे आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर जघन्य परमावधि का भाव-प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि देशावधि के जघन्य द्रव्य की पर्यायरूप भाव जघन्य देशावधि से सर्वावधि पर्यन्त आवली के असंख्यातवें भाग से गुणितक्रम है। अतः भाव की अपेक्षा पूर्व भेद सम्बन्धी भाव के प्रमाण को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर उत्तर भेद सम्बन्धी भाव का प्रमाण निकलता है।

१६४. प्रश्न : उत्कृष्ट परमावधि ज्ञान का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा कितना विषय है ?

उत्तर : उत्कृष्ट परमावधि का **द्रव्य** ध्रुवहार (जो सिद्धराशि के अनन्तवें भाग प्रमाण और अभव्यराशि से अनन्तगुणा है) प्रमाण है। **क्षेत्र** असंख्यात लोक प्रमाण है। **काल** असंख्यात लोकों के प्रदेशों के बराबर समयरूप है। उत्कृष्ट परमावधि

का भाव परमावधि के द्विचरम भेद के विषयभूत भाव से आवली के असंख्यातवें भाग गुणा है (विशेष के लिए देखा- धवला ९/४१-५० पी.जी. ४३६ से ४२२ एवं धवला १३/३२२ से ३२५।)

१६५. प्रश्न : सर्वावधि ज्ञान का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा कितना विषय है ?

उत्तर : सर्वावधि का द्रव्य एक परमाणु है।[1] परमावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र काल व भाव को असंख्यात से गुणा करने पर सर्वावधि का क्षेत्र, काल व भाव आता है। अर्थात् परमावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र को उसके योग्य असंख्यात लोकों से गुणित करने पर सर्वावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र होता है। परमावधि के काल को उसके योग्य असंख्यात रूपों से गुणा करने पर सर्वावधि का उत्कृष्ट काल होता है।

---

१. नोट : इतना विशेष जानना चाहिए कि सर्वावधि का विषयभूत द्रव्य परमाणु नहीं है, किन्तु अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध है, ऐसा भी अनेक आचार्य कहते हैं। (राजवार्तिक १/२४/२ पृ. ८६ एवं इसके टिप्पण ३ व ६ तथा श्लोक-वार्तिक भाग ४ पृ. ६६ व ६७। श्री श्रुतसागर सूरि कृत तत्त्वार्थवृत्ति एवं आचार्य भास्करनन्दी की 'सुखबोध' टीका भी द्रष्टव्य है।) इस प्रकार सर्वावधिज्ञान के द्रव्य के विषय में दो उपदेश प्राप्त होते हैं, एक परमाणु रूप, दूसरा स्कन्ध रूप।

परमावधि के उत्कृष्ट भाव को उसके योग्य असंख्यात रूपों से गुणित करने पर सर्वावधि का उत्कृष्ट भाव होता है। (विशेष के लिए धवला ६/४७ से ५१; गो.जी. ४१३-४२३ देखिये)

१६६. **प्रश्न : नरकगति, तिर्यंचगति और मनुष्यगति के जीवों का अवधिज्ञान के विषयक्षेत्र का प्रमाण कितना है ?**

उत्तर : सातवीं भूमि में नारकियों के अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण एक कोस है। इसके ऊपर प्रथम भूमि के नारकियों के अवधिक्षेत्र पर्यन्त क्रम से आधे-आधे कोस की वृद्धि होती गई है, इस प्रकार प्रथम नरक में नारकियों के अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण पूर्ण एक योजन होता है। तिर्यंचों का अवधिज्ञान जघन्य देशावधि से लेकर उत्कृष्टता की अपेक्षा तैजस शरीर को विषय करने वाले देशावधि के भेद पर्यन्त होता है। मनुष्य गति में मनुष्यों का अवधिज्ञान जघन्य देशावधि से लेकर उत्कृष्टया सर्वावधि पर्यन्त होता है।

१६७. **प्रश्न : देवगति में अवधिज्ञान के विषयक्षेत्र का प्रमाण कितना है ?**

उत्तर : भवनवासी और व्यन्तरों के अवधि के क्षेत्र का जघन्य प्रमाण २५ योजन होता है। ज्योतिषी देवों के अवधि का

क्षेत्र इससे संख्यात गुणा है। भवनत्रिक देवों के अवधि का क्षेत्र नीचे-नीचे कम होता है, और तिर्यग्-रूप से अधिक होता है। भवनवासी देव अपने अवस्थित स्थान से मेरु के शिखर पर्यन्त देखते हैं।

सौधर्म-ऐशान स्वर्ग के देवों का नीचे की ओर अवधिज्ञान का क्षेत्र			प्रथम भूमिपर्यन्त
सानत्कुमार-माहेन्द्र	"	"	द्वितीय "
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर			
लांतव-कापिष्ट	"	"	तृतीय "
शुक्र-महाशुक्र			
शतार-सहस्रार	"	"	चतुर्थ "
आनत-प्राणत			
आरण-अच्युत	"	"	पंचम "
नव ग्रैवेयक-वासी	"	"	छठी "
नव अनुदिश और पाँच अनुत्तरवासी			सम्पूर्ण लोकनाड़ी को अवधि के द्वारा देखते हैं।

१६८. प्रश्न : मनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो इन्द्रियादिक बाह्य निमित्तों की सहायता के बिना ही दूसरे के मन में स्थित चिन्तित (जिसका भूतकाल में चिन्तन किया हो), अचिन्तित (जिसका भविष्यत् काल में

चिन्तन किया जायेगा) अथवा अर्धचिन्तित (वर्तमान में जिसका चिन्तन किया जा रहा है) रूपी पदार्थ को स्पष्ट जानता है उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान मनुष्यलोक में अर्थात् अढ़ाई द्वीप में मुनियों को ही होता है।

१६९. प्रश्न : मनःपर्ययज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर : मनःपर्ययज्ञान के दो भेद हैं- (१) ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान और (२) विपुलमति मनःपर्ययज्ञान। जो सरल मन, वचन, काय के द्वारा किये हुए दूसरे के मन में स्थित रूपी पदार्थ को जानता है उसे **ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान** कहते हैं। जो सरल तथा कुटिल रूप से किये हुए दूसरे के मन में स्थित रूपी पदार्थ को जानता है उसे **विपुलमति मनःपर्ययज्ञान** कहते हैं। दूसरे के पूछने पर और नहीं पूछने पर भी उसके मनःस्थित कषाय को जानता है।

१७०. प्रश्न : मनःपर्ययज्ञान कहाँ से उत्पन्न होता है और उसका स्वामी कौन है ?

उत्तर : जहाँ पर द्रव्यमन होता है, उस स्थान पर आत्मा के जो प्रदेश हैं, वहाँ से मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होता है। प्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यन्त सात गुणस्थानों में से किसी एक

गुणस्थानवर्ती के, सात ऋद्धियों में से कम-से-कम किसी भी एक ऋद्धि धारण करने वाले के और ऋद्धिप्राप्त में भी वर्धमान तथा विशिष्ट चारित्रधारी मुनिराज के ही मनःपर्ययज्ञान पाया जा सकता है।

१७१. प्रश्न : ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान में क्या विशेषता है ?

उत्तर : विशुद्धता और प्रतिपात-अप्रतिपात की अपेक्षा दोनों में विशेषता है। ऋजुमति की अपेक्षा विपुलमति मनःपर्ययज्ञान में अधिक विशुद्धता होती है तथा ऋजुमति प्रतिपाती है और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान अप्रतिपाती है। ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी दूसरे के मन में सरलता के साथ स्थित पदार्थ को पहले ईहा मतिज्ञान के द्वारा जानता है, पश्चात् प्रत्यक्ष रूप से नियम से ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान के द्वारा जानता है। विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी चिन्तित, अचिन्तित, अर्धचिन्तित इस तरह अनेक भेदों को प्राप्त दूसरे के मनोगत पदार्थ को प्रत्यक्ष रूप से जानता है।

१७२. प्रश्न : द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा दोनों भेदों में क्या विशेषता है ?

उत्तर : ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान का जघन्य द्रव्य औदारिक शरीर के निर्जीर्ण समयप्रबद्ध प्रमाण है तथा उत्कृष्ट द्रव्य चक्षुइन्द्रिय के निर्जरा द्रव्य प्रमाण है। ऋजुमति का जघन्य क्षेत्र दो-तीन कोस और उत्कृष्ट सात-आठ योजन है। ऋजुमति का जघन्य काल दो-तीन भव और उत्कृष्ट काल सात-आठ भव है। ऋजुमति का जघन्य और उत्कृष्ट भाव यद्यपि आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, तो भी जघन्य से उत्कृष्ट का प्रमाण असंख्यातगुणा है।

विपुलमति का जघन्य द्रव्य, ऋजुमति के उत्कृष्ट द्रव्य में ध्रुवहार (मनोद्रव्यवर्गणा का अनन्तवाँ भाग) का भाग देने से जो लब्ध प्राप्त हो, उतना है।

असंख्यात कल्पों के जितने समय हैं, उतनी बार विपुलमति मन:पर्ययज्ञान के द्वितीय द्रव्य में ध्रुवहार का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना विपुलमति के उत्कृष्ट द्रव्य का

प्रमाण है। विपुलमति मनःपर्ययज्ञान का जघन्य क्षेत्र आठ-नौ योजन तथा उत्कृष्ट क्षेत्र मनुष्यलोक[1] प्रमाण है। विपुलमति का जघन्य काल सात-आठ भव और उत्कृष्ट काल पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। भाव की अपेक्षा विपुलमति का जघन्य विषय ऋजुमति के उत्कृष्ट विषय से असंख्यातगुणा है तथा उत्कृष्ट विषय असंख्यात लोक प्रमाण है।

१७३. प्रश्न : केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो समस्त द्रव्य और उनकी समस्त पर्यायों को वर्तमान पर्याय की तरह स्पष्ट जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं। केवलज्ञान ज्ञानगुण की सर्वोत्कृष्ट पर्याय है, इसके अविभागप्रतिच्छेद उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्रमाण हैं।

---

१. यहाँ नरलोक-मनुष्यलोक से मनुष्यलोक का विष्कम्भ ग्रहण करना चाहिए न कि वृत्त, क्योंकि मानुषोत्तर पर्वत के बाहर चारों कोणों में स्थित तिर्यंच और देवों के द्वारा चिन्तित पदार्थ को भी विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी जानते हैं, कारण यह है कि मनःपर्ययज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र ऊँचाई में कम होते हुए भी समचतुरस्र घनप्रतररूप ४५ लाख योजन प्रमाण है। (गो.जी.गा. ४५६)। मानुषोत्तर शैल शब्द उपलक्षणभूत है, इसलिए ये ४५ लाख योजन के भीतर स्थित जीवों की चिन्ता के विषयभूत त्रिकालगोचर पदार्थों के विषय को जानते हैं, ऐसा सिद्ध होता है। धवल १३/३४३-३४४, धवल ६/६८, जयधवल १/१७, १/१८, १/१९।

१७४. प्रश्न : ज्ञानमार्गणा में जीवों की संख्या का प्रमाण कितना है ?

उत्तर : ज्ञानमार्गणा में मतिज्ञानियों का अथवा श्रुतज्ञानियों का प्रमाण पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। मन:पर्ययज्ञानी संख्यात हैं। केवलज्ञानियों का प्रमाण सिद्धराशि से कुछ अधिक है। अवधिज्ञान रहित तिर्यंच मतिज्ञानियों की संख्या के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अवधिज्ञान रहित मनुष्य संख्यात हैं तथा इन दोनों ही राशियों को मतिज्ञानियों के प्रमाण में से घटाने पर जो शेष रहे उतना अवधिज्ञानियों का प्रमाण है।

१७५. प्रश्न : कुमति, कुश्रुत और कुअवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : मिथ्यादृष्टि जीवों के मति, श्रुत और अवधिज्ञान को क्रम से कुमति, कुश्रुत और कुअवधिज्ञान कहते हैं।

१७६. प्रश्न : कौन-कौन सा ज्ञान किस गुणस्थान से किस गुणस्थान पर्यन्त होता है ?

उत्तर : कुमति, कुश्रुत और कुअवधिज्ञान प्रथम और दूसरे गुणस्थान में होता है। तीसरे गुणस्थान में मिश्र रूप ज्ञान होता है। मति, श्रुत और अवधिज्ञान चतुर्थ से बारहवें गुणस्थान पर्यन्त होता है; मन:पर्ययज्ञान छठे से बारहवें गुणस्थान पर्यन्त होता है। केवलज्ञान तेरहवें और चौदहवें

गुणस्थान में होता है तथा सिद्ध अवस्था में भी रहता है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बाद सीधा केवलज्ञान हो सकता है तथा मति, श्रुत और अवधिज्ञान के बाद भी केवलज्ञान हो सकता है और मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान के बाद भी केवलज्ञान हो सकता है।

१७७. प्रश्न : संयम किसे कहते हैं ?

उत्तर : अहिंसा आदि महाव्रतों को धारण करना ईर्या आदि समितियों का पालन करना, क्रोध आदि कषायों का निग्रह करना, मन, वचन और काय की प्रवृत्ति रूप दण्डों का त्याग करना तथा स्पर्शन आदि इन्द्रियों के विषयों को जीतना, उसे संयम कहते हैं।

१७८. प्रश्न : संयम की उत्पत्ति का अन्तरंग कारण क्या है ?

उत्तर : प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ के क्षयोपशम से, बादर संज्वलन के उदय से अथवा सूक्ष्म लोभ के उदय से और मोहनीय कर्म के उपशम से अथवा क्षय से नियम से संयम रूप भाव उत्पन्न होते हैं।

१७९. प्रश्न : संयम मार्गणा के कितने भेद हैं, उनकी उत्पत्ति के क्या कारण हैं और कौन-कौन से गुणस्थान में वे पाये जाते हैं ?

उत्तर : संयम के सात भेद हैं- (१) सामायिक, (२) छेदोपस्थापना, (३) परिहार-विशुद्धि, (४) सूक्ष्मसाम्पराय, (५) यथाख्यात, (६) संयमासंयम और (७) असंयम।

सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ये तीन संयम बादर संज्वलन कषाय के देशघाति-स्पर्धकों का उदय रहते हुए होते हैं। सामायिक और छेदोपस्थापना संयम छठे गुणस्थान से नौवें गुणस्थान तक होता है। परिहारविशुद्धि सथम छठे और सातवें गुणस्थान मे होता है। सूक्ष्मसाम्पराय संयम सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त संज्वलन लोभ का उदय रहते हुए सूक्ष्मसाम्पराय नामक दसवें गुणस्थान में होता है। यथाख्यात संयम सम्पूर्ण मोहनीय कर्म के उपशम से ग्यारहवें गुणस्थान में तथा सम्पूर्ण मोहनीय कर्म के क्षय से बारहवें आदि गुणस्थानों में होता है। संयमासंयम अप्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम और प्रत्याख्यानावरणादि कषाय के उदय से पाँचवें गुणस्थान में होता है। असंयम मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी एवं अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से आदि के चार गुणस्थानों में होता है।

१८०. प्रश्न : सामायिक संयम किसे कहते हैं ?

उत्तर : संयम में संग्रह नय की अपेक्षा से भेद रहित होकर अर्थात् अभेद रूप से "मैं सर्वसावद्य का त्यागी हूँ" इस तरह से सम्पूर्ण सावद्य का त्याग करना सामायिक संयम है।

१८१. प्रश्न : छेदोपस्थापना संयम किसे कहते हैं ?

उत्तर : छेद अर्थात् अहिंसादि महाव्रत के विकल्पपूर्वक अपने आपको संयम में उपस्थित करना अथवा छेद अर्थात् सामायिक चारित्र से च्युत होने पर अपने आपको फिर से उसी में उपस्थित करना छेदोपस्थापना संयम कहलाता है।

१८२. प्रश्न : परिहारविशुद्धि संयम किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस संयम में जीवहिंसा के परिहार के साथ विशिष्ट प्रकार की विशुद्धता होती है उसे परिहारविशुद्धि संयम कहते हैं। जो जन्म से लेकर तीस वर्ष तक सुखी रहकर दीक्षा लेते हैं और तीर्थंकर के पादमूल में आठ वर्ष तक प्रत्याख्यानापूर्व का अध्ययन करते हैं, ऐसे मुनि के यह परिहारविशुद्धि संयम प्रकट होता है। उनके शरीर से किसी जीव का विघात नहीं होता है। इस संयम वाले जीव तीन संध्याकालों को छोड़कर प्रतिदिन दो कोस विहार करते हैं, रात्रि को गमन नहीं करते हैं। इनके वर्षाऋतु में

विहार करने का या नहीं करने का कोई नियम नहीं है।

१८३. प्रश्न : सूक्ष्मसाम्पराय संयम किसे कहते हैं ?

उत्तर : उपशम श्रेणी वाले अथवा क्षपक श्रेणी वाले जीव के जहाँ संज्वलन लोभ का अत्यन्त सूक्ष्म उदय रहता है, उसके संयम को सूक्ष्मसाम्पराय संयम कहते हैं। इनके परिणाम यथाख्यात चारित्र वाले जीव के परिणामों से कुछ ही कम होते हैं। यह संयम दसवें गुणस्थान में होता है।

१८४. प्रश्न : यथाख्यात संयम किसे कहते हैं ?

उत्तर : समस्त मोहनीय कर्म का उपशम अथवा क्षय हो जाने से जहाँ यथावस्थित आत्म स्वभाव की उपलब्धि हो जाती है, उसे यथाख्यात संयम कहते हैं। यह संयम ग्यारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के उपशम से और ऊपर के तीन गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के क्षय से होता है।

१८५. प्रश्न : संयमासंयम किसे कहते हैं ?

उत्तर : जहाँ अप्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम और प्रत्याख्यानावरण के उदय की तरतमता से एकदेशचारित्र होता है उसे संयमासंयम कहते हैं। इस संयम में पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतों

का पालन होता है। इसके दर्शन प्रतिमा आदि ग्यारह भेद हैं। इस देशसंयम के द्वारा जीवों के असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा होती है।

१८६. प्रश्न : असंयम किसे कहते हैं ?

उत्तर : जहाँ त्रस, स्थावर जीवों की हिंसा तथा पाँच इन्द्रियों के विषयों के त्याग का भाव नहीं होता है, उसे असंयम कहते हैं। यह प्रारम्भ से चतुर्थ गुणस्थान तक होता है। मिथ्यादृष्टि असंयत की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि असंयत की प्रवृत्ति में बहुत अन्तर होता है।

१८७. प्रश्न : सामायिक आदि संयमी जीवों का पृथक्-पृथक् कितना प्रमाण है ?

उत्तर : प्रमत्तादि चार गुणस्थानवर्ती जीवों का जितना प्रमाण है [आठ करोड़ नब्बे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन (८,९०,९९,१०३)] उतने सामायिक संयमी होते हैं और उतने ही छेदोपस्थापना संयमी होते हैं। परिहारविशुद्धि संयमी तीन कम सात हजार (६,९९७) होते हैं। सूक्ष्मसाम्पराय संयमी तीन कम नौ सौ (८९७) होते हैं। यथाख्यातसंयमी तीन कम नौ लाख (८,९९,९९७) होते हैं। देश-संयमी पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं।

इन छहों राशियों को संसारी जीवराशि में से घटाने पर जो शेष रहे उतना असंयमियों का प्रमाण है।

१८८. प्रश्न : दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ के विशेष अंश को ग्रहण न करके सामान्य अंश का जो निर्विकल्प ग्रहण होता है, उसे दर्शन कहते हैं। कोई आचार्य सामान्य का अर्थ आत्मा करते हैं, अतः उनके अभिप्राय से आत्मावलोकन को दर्शन कहते हैं।

१८९. प्रश्न : दर्शन मार्गणा के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दर्शन मार्गणा के चार भेद हैं- (१) चक्षुदर्शन, (२) अचक्षुदर्शन, (३) अवधिदर्शन और (४) केवलदर्शन।

१९०. प्रश्न : चक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : चक्षु इन्द्रिय से होने वाले ज्ञान के पहले पदार्थ का जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे चक्षुदर्शन कहते हैं।

१९१. प्रश्न : अचक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : चक्षु इन्द्रिय के सिवाय अन्य इन्द्रियों और मन से होने वाले ज्ञान के पूर्व पदार्थ का जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं।

१९२. प्रश्न : अवधिदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : अवधिज्ञान के पहले पदार्थ का जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे अवधिदर्शन कहते हैं।

१९३. प्रश्न : केवलदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : केवलज्ञान के साथ समस्त पदार्थों का जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे केवलदर्शन कहते हैं।

१९४. प्रश्न : कौन-कौन सा दर्शन किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक होता है ?

उत्तर : चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन प्रथम गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है। अवधिदर्शन चतुर्थ गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है। केवलदर्शन तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में और उसके बाद सिद्ध अवस्था में भी होता है।

१९५. प्रश्न : लेश्या किसे कहते हैं ?

उत्तर : कषाय के उदय से अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। अथवा जिसके द्वारा जीव अपने को पुण्य और पाप से लिप्त करे, उसे लेश्या कहते हैं।

१६६. प्रश्न : लेश्या के कितने भेद हैं ? द्रव्यलेश्या का वर्ण कैसा है ?

उत्तर : लेश्या के छह भेद हैं- (१) कृष्ण (२) नील (३) कापोत (४) पीत (५) पद्म और (६) शुक्ल। प्रत्येक इन्द्रियों से प्रकट होने की अपेक्षा संख्यात भेद हैं। स्कन्धों के भेदों की अपेक्षा असंख्यात और परमाणु भेद की अपेक्षा अनन्त तथा अनन्तानन्त भेद होते हैं। वर्ण की अपेक्षा भ्रमर के समान कृष्णलेश्या, नीलमणि के समान नीललेश्या, कबूतर के समान कापोतलेश्या, सुवर्ण के समान पीतलेश्या, कमल के समान पद्मलेश्या और शंख के समान शुक्ललेश्या होती है।

१६७. प्रश्न : कौन से जीवों की कौन-सी द्रव्यलेश्या होती है ?

उत्तर : सम्पूर्ण नारकियों का कृष्णवर्ण।

कल्पवासी देवों की द्रव्यलेश्या भावलेश्या के सदृश।

भवनत्रिक देवों के छहों लेश्या।

मनुष्य, तिर्यंचों के छहों लेश्या।

देवों की विक्रिया का छहों लेश्याओं में से किसी एक लेश्या का वर्ण।

उत्तम भोगभूमि के मनुष्य-तिर्यंचों का सूर्य समान वर्ण।

मध्यम भोगभूमि के जीवों का चन्द्र समान वर्ण।

जघन्य भोगभूमि के जीवों का हरित वर्ण।

बादर जलकायिक जीवों का शुक्ल वर्ण।

बादर तेजस्कायिक जीवों का पीत वर्ण।

घनोदधिवातवलय अर्थात् वायुकायिक जीवों का गोमूत्र वर्ण।

घनवातवलय (वायुकायिक जीवों) का मूंगा समान वर्ण।

तनुवातवलय (वायुकायिक जीवों) का अव्यक्त वर्ण।

सम्पूर्ण सूक्ष्म जीवों के शरीर का कापोत वर्ण।

विग्रह में सम्पूर्ण जीवों के शरीर का शुक्ल वर्ण और निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था वाले जीवों का कापोत वर्ण होता है।

१६८. प्रश्न : कृष्ण लेश्या वाले जीव के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर : जो अत्यन्त क्रोधी हो, वैर को नहीं छोड़ता हो, भंड वचन बोलने वाला हो, दयाधर्म से रहित हो, दृष्टि हो तथा किसी के भी वश में न हो, वह कृष्ण लेश्या वाला जीव है।

१९९. प्रश्न : नील लेश्या वाले जीव के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर : जो काम करने में मन्द हो, बुद्धिहीन हो, विवेकरहित हो, ठगने वाला हो और धन-धान्य में तीव्र आसक्ति रखता हो, वह नील लेश्यावाला जीव है।

२००. प्रश्न : कापोत लेश्या वाले जीव के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर : जो दूसरों पर क्रोध करता हो, दूसरों की निन्दा करता हो, बहुत शोक तथा भय करने वाला हो, दूसरों से ईर्ष्या करता हो, अपनी बहुत प्रशंसा करता हो, अपने ही समान दूसरों को मानता हुआ जो किसी का विश्वास नहीं करता हो, अपनी प्रशंसा सुनकर सन्तुष्ट होता हो, हानि-लाभ को नहीं समझता हो, युद्ध में मरने की इच्छा रखता हो, स्तुति किये जाने पर बहुत धन देने वाला हो और कार्य-अकार्य की जिसे पहचान नहीं हो, वह कापोत लेश्या वाला जीव है।

२०१. प्रश्न : पीत लेश्या वाले जीव के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर : जो करने योग्य और न करने योग्य कार्य को जानता हो, सेव्य-असेव्य का विवेक रखता हो, सब जीवों पर समान दृष्टि रखता हो तथा दया, दान में तत्पर रहता हो, वह पीत लेश्या वाला जीव है।

२०२. **प्रश्न : पद्म लेश्या वाले जीव के क्या लक्षण हैं ?**

उत्तर : जो त्यागी हो, भद्रपरिणामी हो, उत्तम हो, उद्यमशील हो, क्षमावान हो तथा साधु और गुरुजनों की पूजा में लीन रहता हो, वह पद्म लेश्या वाला जीव है।

२०३. **प्रश्न : शुक्ल लेश्या वाले जीव के क्या लक्षण हैं ?**

उत्तर : जो पक्षपात से रहित हो, निदानरहित हो, सबके साथ समान व्यवहार रखता हो, जिसे राग-द्वेष न हो तथा स्त्री-पुत्रादिक में स्नेह रहित हो, वह शुक्ल लेश्या वाला जीव है।

२०४. **प्रश्न : नारकियों में कौन-कौन सी भाव लेश्या होती है ?**

उत्तर : रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकियों में कापोत लेश्या का जघन्य अंश, शर्कराप्रभा पृथ्वी के नारकियों में कापोत लेश्या का मध्यम अंश, बालुकाप्रभा पृथ्वी के नारकियों में कापोत लेश्या का उत्कृष्ट अंश, और नील लेश्या का जघन्य अंश, पंकप्रभा पृथ्वी के नारकियों में नील लेश्या का मध्यम अंश, धूमप्रभा पृथ्वी के नारकियों में नील लेश्या का उत्कृष्ट अंश, और कृष्ण लेश्या का जघन्य अंश, तमःप्रभा पृथ्वी के नारकियों में कृष्ण लेश्या का मध्यम अंश, महातमः पृथ्वी के नारकियों में कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट अंश होता है।

२०५. प्रश्न : देवों में कौन-कौन सी भाव लेश्या होती है ?

उत्तर : भवनत्रिक देवों में पीत लेश्या का जघन्य अंश, सौधर्म-ईशान स्वर्ग के देवों मे पीत लेश्या का मध्यम अंश, सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग के देवों में पीत लेश्या का उत्कृष्ट अंश और पद्म लेश्या का जघन्य अंश, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लांतव-कापिष्ट और शुक्र महाशुक्र स्वर्ग के देवों में पद्म लेश्या का मध्यम अंश, शतार-सहस्रार स्वर्ग के देवों में पद्म लेश्या का उत्कृष्ट अंश, और शुक्ल लेश्या का जघन्य अंश, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत तथा नौ ग्रैवेयक के देवों में शुक्ल लेश्या का मध्यम अंश, नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर देवों में शुक्ल लेश्या का उत्कृष्ट अंश और भवनवासी आदि तीन देवों के अपर्याप्त अवस्था में तीन अशुभ लेश्याएं होती हैं।

२०६. प्रश्न : मनुष्यों में कौन-कौन सी भाव लेश्या होती है ?

उत्तर : चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त मनुष्यों में छहों लेश्याएँ, देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती मनुष्यों में तीन शुभ लेश्याएँ तथा अपूर्वकरण से सयोगकेवली पर्यन्त मनुष्यों में एक शुक्ल लेश्या ही होती है। भोगभूमि में सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के पर्याप्त अवस्था

में पीत आदि तीन शुभ लेश्याएँ और निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में कापोत लेश्या का जघन्य अंश होता है।

२०७. प्रश्न : **तिर्यंचों में कौन-कौन सी भाव लेश्या होती है ?**

उत्तर : एकेन्द्रिय और विकलत्रय जीवों में कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचों में एवं संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्यात तिर्यंचों में कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचों में कृष्ण आदि चार लेश्याएँ होती हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचों में प्रथम से चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त छहों लेश्याएँ होती हैं और पंचम गुणस्थान में तीन शुभ लेश्याएँ होती हैं। भोगभूमिस्थ पर्याप्त तिर्यंचों में पीत आदि तीन शुभ लेश्याएँ एवं निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में कापोत लेश्या का जघन्य अंश होता है।

२०८. प्रश्न : **समुद्घात किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं और उनका क्या स्वरूप है ?**

उत्तर : मूल शरीर को न छोड़ते हुए आत्मा के कुछ प्रदेशों के बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं। समुद्घात के ७ भेद हैं- (१) **वेदना** : पीड़ा- वेदना के निमित्त से

आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना वेदना समुद्घात। **(२) कषायः** क्रोधादि के वश आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना कषाय समुद्घात है। **(३) वैक्रियिक :** विक्रिया के द्वारा आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना वैक्रियिक समुद्घात है। **(४) मारणान्तिक :** मरण से पूर्व नवीन जन्म के योग्य क्षेत्र का स्पर्श करने हेतु आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना मारणान्तिक समुद्घात है। **(५) तैजस :** शुभ या अशुभ तैजस ऋद्धि के द्वारा तैजस शरीर के साथ आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना तैजस समुद्घात है। **(६) आहारक :** ऋद्धिधारी प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनिराजों के मस्तक से निकलने वाले आहारक शरीर के द्वारा आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना आहारक समुद्घात है। **(७) केवली :** आयुस्थिति के बराबर शेष तीन अघाती कर्मों की स्थिति करने के लिए केवली भगवान के दण्ड, कपाट, प्रतर एवं लोकपूरण क्रिया में आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना केवली समुद्घात है।

आहारक और मारणान्तिक समुद्घात अवस्था में आत्मप्रदेशों का एक ही दिशा में गमन होता है किन्तु बाकी पाँच भेदों में दसों दिशाओं में गमन होता है।

२०९. प्रश्न : लेश्याओं का जघन्य और उत्कृष्ट काल कितना है ?

उत्तर : एक जीव की अपेक्षा सम्पूर्ण लेश्याओं का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। एक जीव की अपेक्षा कृष्णलेश्या का उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तैंतीस सागर, नीललेश्या का कुछ अधिक सत्रह सागर, कापोतलेश्या का कुछ अधिक सात सागर, पीतलेश्या का कुछ अधिक दो सागर, पद्मलेश्या का कुछ अधिक अठारह सागर और शुक्ललेश्या का कुछ अधिक तैंतीस सागर है।

२१०. प्रश्न : कौन-सी लेश्या किस गुणस्थान तक होती है ?

उत्तर : प्रथम गुणस्थान से लेकर चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त छहों लेश्याएँ होती हैं। प्रथम से सप्तम् गुणस्थान पर्यन्त तीन शुभ लेश्याएँ एवं प्रथम से तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त शुक्ल लेश्या होती है।

२११. प्रश्न : कषायोदय की अनुरंजना के बिना ग्यारहवें से तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त लेश्या का लक्षण कैसे घटित होता है ?

उत्तर : भूतपूर्व प्रज्ञापन नय की अपेक्षा वहाँ की योगप्रवृत्ति में ऐसा व्यवहार होता है कि यह वही योग-प्रवृत्ति है जो पहले कषायोदय से अनुरंजित थी। इस व्यवहार से वहाँ

लेश्या का सद्भव माना जाता है। चौदहवें गुणस्थान में योगप्रवृत्ति नहीं होने से लेश्या का अभाव माना जाता है।

२१२. प्रश्न : भव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस जीव में रत्नत्रय-प्राप्ति की योग्यता हो उसे भव्य कहते हैं।

२१३. प्रश्न : भव्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर : भव्य के तीन भेद हैं- (१) निकट-भव्य, (२) दूरभव्य और (३) दूरानुदूरभव्य। जो सात-आठ भव में मोक्ष प्राप्त करने वाला हो, उसे निकटभव्य कहते हैं। जो अर्धपुद्गल परावर्तन प्रमाण काल के भीतर मोक्ष प्राप्त करने वाला हो उसे **दूरभव्य** कहते हैं। जैसे बन्ध्यापने के दोष से रहित स्त्री के बाह्य निमित्त मिलने पर नियम से पुत्रोत्पत्ति होगी, वैसे इन जीवों को नियम से मोक्षफल की प्राप्ति होगी। जो भव्य होने पर भी कभी मोक्ष प्राप्त न कर सके उसे **दूरानुदूरभव्य** कहते हैं। ये जीव नित्यनिगोद में ही पाये जाते हैं। जैसे बन्ध्यापने के दोष से रहित विधवा सती स्त्री में पुत्रोत्पत्ति की योग्यता है, परन्तु बाह्य निमित्त नहीं मिलने पर उसके कभी पुत्रोत्पत्ति नहीं होगी, वैसे ही नित्य निगोद में बाह्य सामग्री का अभाव होने से मोक्षफल

की प्राप्ति नहीं होगी। जैसे अहमिन्द्र देवों में नरकादि में गमन करने की शक्ति है परन्तु उस शक्ति की अभिव्यक्ति नहीं है, वैसे दूरानुदूर भव्यों की शक्ति की अभिव्यक्ति नहीं होती है।

२१४. प्रश्न : अभव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस जीव में रत्नत्रय-प्राप्ति की योग्यता न हो, उसे अभव्य कहते हैं। जैसे-बन्ध्या स्त्री को निमित्त मिले चाहे न मिले परन्तु पुत्रोत्पत्ति नहीं होगी वैसे अभव्य जीवों को कभी मोक्षफल की प्राप्ति नहीं होगी।

२१५. प्रश्न : भव्यत्व मार्गणा का गुणस्थानों में किस प्रकार का विभाग है ?

उत्तर : अभव्य जीव सदा प्रथम गुणस्थान में रहते हैं। भव्य जीव प्रथम से चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त होते हैं। सिद्ध परमेष्ठी भव्यत्व और अभव्यत्व के व्यवहार से रहित होते हैं।

२१६. प्रश्न : भव्य-अभव्य जीवों का कितना प्रमाण है ?

उत्तर : जघन्य युक्तानन्तप्रमाण अभव्य जीवों का प्रमाण है और सम्पूर्ण संसारी जीवराशि में से अभव्य जीवों का प्रमाण घटाने पर, जो शेष रहे उतना भव्य जीवों का प्रमाण है।

२१७. प्रश्न : संसार परिवर्तन के कितने भेद हैं ?

उत्तर : संसार-परिवर्तन के पाँच भेद हैं- (१) द्रव्य, (२) क्षेत्र, (३) काल, (४) भव और (५) भाव।

२१८. प्रश्न : द्रव्य परिवर्तन के कितने भेद हैं और उनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर : द्रव्य परिवर्तन के दो भेद हैं- (१) नोकर्मद्रव्य परिवर्तन और (२) कर्मद्रव्य परिवर्तन।

नोकर्मद्रव्य परिवर्तन : किसी जीव ने स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गन्धादि के तीव्र-मन्द-मध्यम भावों में से यथासम्भव भावों से युक्त औदारिकादि तीन शरीरों में से किसी शरीर सम्बन्धी तथा छह पर्याप्ति रूप परिणमन के योग्य पुद्गलों को एक समय में ग्रहण किया। पीछे द्वितीयादि समयों में उस द्रव्य की निर्जरा कर दी। पीछे अनन्त बार अगृहीत पुद्गलों को ग्रहण कर छोड़ दिया, अनन्त बार मिश्र द्रव्य को ग्रहण कर छोड़ दिया, अनन्त बार गृहीत को भी ग्रहण कर छोड़ दिया, जब वही जीव उन ही स्निग्ध- रूक्षादि भावों से युक्त उन्हीं पुद्गलों को जितने समय बाद ग्रहण करे, प्रारंभ से लेकर उतने काल समुदाय को नोकर्मद्रव्य परिवर्तन कहते हैं।

कर्मद्रव्य परिवर्तन : किसी जीव ने स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण एवं गन्धादि के तीव्र-मन्द-मध्यम भावों में से यथासम्भव भावों से युक्त आठ कर्मों के योग्य कर्म-पुद्गलद्रव्य का समयप्रबद्ध रूप में एक समय में ग्रहण किया। पश्चात् एक आवली काल के अनन्तर गृहीत कर्मद्रव्य की निर्जरा का प्रारंभ हुआ। पीछे अनन्त बार अगृहीत पुद्गलों को ग्रहण कर छोड़ दिया, अनन्त बार मिश्रद्रव्य को ग्रहण कर छोड़ दिया, अनन्त बार गृहीत को भी ग्रहण कर छोड़ दिया। जब वही जीव उन्हीं स्निग्ध रूक्षादि भावों से युक्त उन्हीं पुद्गलों को जितने समय बाद ग्रहण करे, प्रारंभ से लेकर उतने काल समुदाय को कर्मद्रव्य परिवर्तन कहते हैं। नोकर्मद्रव्य परिवर्तन और कर्मद्रव्य परिवर्तन के समूह को द्रव्य परिवर्तन कहते हैं।

२१९. प्रश्न : क्षेत्र परिवर्तन के कितने भेद हैं और उनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर : क्षेत्र परिवर्तन के दो भेद हैं- (१) स्व-क्षेत्र परिवर्तन और (२) परक्षेत्र परिवर्तन। **स्वक्षेत्र परिवर्तन :** एक जीव सर्व जघन्य अवगाहना के प्रदेश प्रमाण बार जघन्य अवगाहना को धारण कर पश्चात् क्रमशः एक-एक प्रदेश अधिक-अधिक की अवगाहनाओं को धारण करते-करते महामत्स्य

की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त अवगाहनाओं को जितने समय में धारण कर सके उतने कालसमुदाय को एक स्वक्षेत्र परिवर्तन कहते हैं। **परक्षेत्र परिवर्तन** : कोई जघन्य अवगाहना का धारक सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव सुदर्शन मेरु के नीचे अचल रूप से स्थित लोक के अष्ट मध्य प्रदेशों को अपने शरीर के बनाकर उत्पन्न हुआ, पीछे वही जीव उसी रूप से उसी स्थान में दूसरी-तीसरी बार उत्पन्न हुआ। इसी तरह घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य अवगाहना के जितने प्रदेश हैं उतनी बार उसी स्थान पर क्रम से उत्पन्न हुआ और श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण क्षुद्र आयु को भोग-भोगकर मरण को प्राप्त हुआ। पीछे एक-एक प्रदेश के अधिक क्रम से जितने काल में सम्पूर्ण लोक को अपना जन्मक्षेत्र बना ले उतने कालसमुदाय को एक परक्षेत्र-परिवर्तन कहते हैं।

२२०. प्रश्न : काल परिवर्तन किसे कहते हैं ?

उत्तर : कोई जीव उत्सर्पिणी के प्रथम समय में पहली बार उत्पन्न हुआ, इसी तरह दूसरी बार दूसरी उत्सर्पिणी के दूसरे समय में उत्पन्न हुआ, इसी क्रम से उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के बीस कोड़ाकोड़ी सागर के जितने समय हैं उनमें क्रमशः उत्पन्न हुआ तथा इसी क्रम से मरण को

प्राप्त हुआ, इसमें जितना काल लगे उतने कालसमुदाय को एक काल परिवर्तन कहते हैं।

२२१. प्रश्न : भव परिवर्तन किसे कहते हैं ?

उत्तर : कोई जीव दस हजार वर्ष के जितने समय हैं उतनी बार जघन्य दस हजार वर्ष की आयु से प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ, पीछे एक-एक समय के अधिक क्रम से नरकगति सम्बन्धी तैंतीस सागर की उत्कृष्ट आयु को उसने क्रम से पूर्ण किया, पश्चात् अन्तर्मुहूर्त के जितने समय हैं उतनी बार जघन्य अन्तर्मुहूर्त की आयु से तिर्यंचगति में उत्पन्न होकर यहाँ पर भी नरकगति के सदृश एक-एक समय के अधिक क्रम से तिर्यंचगति सम्बन्धी तीन पल्य की उत्कृष्ट आयु को पूर्ण किया, पश्चात् तिर्यंचगति के सदृश्य मनुष्यगति को पूर्ण किया, क्योंकि मनुष्यगति में भी जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट आयु तीन पल्य है। मनुष्यगति के बाद दस हजार वर्ष के जितने समय हैं, उतनी बार जघन्य दस हजार वर्ष की आयु से देवगति में उत्पन्न होकर पीछे एक-एक समय के अधिक क्रम से इकतीस सागर की आयु को पूर्ण किया क्योंकि मिथ्यादृष्टि देव की उत्कृष्ट आयु इकतीस सागर तक ही होती है। इस क्रम से चारों गतियों में भ्रमण करने में जितना काल लगे,

उतने काल को एक भव-परिवर्तन का काल कहते हैं तथा इतने काल में जितना भ्रमण किया जाय उसे भव परिवर्तन कहते हैं। इन परिवर्तनों का निरूपण मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से है क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव संसार में अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल से अधिक काल तक नहीं रहते हैं।

२२२. प्रश्न : भाव परिवर्तन किसके निमित्त से होता है ?

उत्तर : योगस्थान, अनुभागबन्ध अध्यवसाय-स्थान, कषाय अध्यवसायस्थान अथवा स्थितिबन्ध अध्यवसायस्थान और स्थितिस्थान के निमित्त से भाव परिवर्तन होता है।

२२३. प्रश्न : योगस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : प्रकृति और प्रदेश बन्ध के कारणभूत आत्मा के प्रदेश-परिस्पन्दन रूप योग के तरतमरूप स्थानों को योगस्थान कहते हैं।

२२४. प्रश्न : अनुभागबन्ध अध्यवसाय स्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिन कषायों के तरतम रूप स्थानों से अनुभागबन्ध होता है, उनको अनुभागबन्ध अध्यवसायस्थान कहते हैं।

२२५. प्रश्न : स्थिति-बन्ध अध्यवसायस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : स्थितिबन्ध के कारणभूत कषाय-परिणामों को स्थितिबन्ध अध्यवसायस्थान कहते हैं।

२२६. प्रश्न : स्थितिस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : बन्ध रूप कर्म की जघन्यादि स्थिति को स्थितिस्थान कहते हैं।

२२७. प्रश्न : भाव परिवर्तन किसे कहते हैं ?

उत्तर : श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थानों के हो जाने पर एक अनुभागबन्ध अध्यवसायस्थान होता है। असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबन्ध अध्यवसायस्थानों के हो जाने पर एक स्थितिबन्ध अध्यवसायस्थान होता है। असंख्यात लोकप्रमाण स्थितिबन्ध अध्यवसायस्थानों के हो जाने पर एक स्थितिस्थान होता है। इस क्रम से ज्ञानावरण आदि समस्त मूल प्रकृतियों व उत्तर प्रकृतियों के समस्त स्थानों के पूर्ण होने पर एक भाव परिवर्तन होता है।

किसी पर्याप्त संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव के ज्ञानावरण कर्म की अन्तकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण जघन्य स्थिति का बन्ध होता है। यही यहाँ पर जघन्य स्थिति है, अतः इसके योग्य विवक्षित जीव के जघन्य ही अनुभागबन्ध अध्यवसायस्थान, जघन्य ही कषाय अध्यवसायस्थान और जघन्य ही योग स्थान होते हैं। यहाँ से भाव-परिवर्तन का

प्रारंभ होता है। अर्थात् इसके आगे श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थानों के क्रम से हो जाने पर दूसरा अनुभाग बन्ध अध्यवसायस्थान होता है। इसके बाद फिर श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थानों के क्रम से हो जाने पर तीसरा अनुभागबन्ध अध्यवसाय स्थान होता है। इसी क्रम से असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्ध अध्यवसायस्थानों के हो जाने पर दूसरा कषाय अध्यवसायस्थान होता है। उसी क्रम से असंख्यात लोक प्रमाण कषाय अध्यवसायस्थानों के हो जाने पर भी वही जघन्य स्थिति-स्थान होता है। जो क्रम जघन्य स्थिति-स्थान में बताया, वही क्रम एक-एक समय अधिक द्वितीयादि स्थिति-स्थान में जानना चाहिए तथा इसी क्रम से ज्ञानावरण की जघन्य स्थिति से उत्कृष्ट स्थिति तक समस्त स्थिति-स्थानों के हो जाने पर और ज्ञानावरण के स्थिति-स्थानों की तरह क्रम से सम्पूर्ण मूल व उत्तर प्रकृतियों के समस्त स्थिति-स्थानों के पूर्ण होने पर एक भाव परिवर्तन होता है।

सभी परिवर्तनों में जहाँ क्रमभंग होगा वहाँ पूरा परिवर्तन गिनती में नहीं आता है, पुनः प्रारम्भ से गिना जाता है।

२२८. प्रश्न : छह द्रव्यों में क्या-क्या लक्षण हैं ?

उत्तर : जिसमें ज्ञान-दर्शन रूप उपयोग पाया जाय उसे **जीव द्रव्य** कहते हैं। जिसमें वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श गुण पाया जाय उसे **पुद्गल द्रव्य** कहते हैं। जो स्वयं गमन करते हुए जीव और पुद्गल द्रव्य को गमन करने में उदासीन रूप से सहकारी कारण हो उसे **धर्म द्रव्य** कहते हैं, जैसे पथिक को मार्ग। जो स्वयं ठहरे हुए जीव और पुद्गल द्रव्य को ठहरने में उदासीन रूप से सहकारी कारण हो उसे **अधर्म द्रव्य** कहते हैं, जैसे ठहरने वाले को आसन। जो सम्पूर्ण द्रव्यों को स्थान देने में सहायक हो उसे **आकाश द्रव्य** कहते हैं, जैसे निवास करने वालों को मकान। जो समस्त द्रव्यों को अपने-अपने स्वभाव में वर्तने का सहकारी कारण हो उसे **काल द्रव्य** कहते हैं अर्थात् द्रव्यों को बताने वाला सहकारी कारण रूप वर्तना गुण जिसमें पाया जाय उसे काल द्रव्य कहते हैं।

२२९. प्रश्न : सभी द्रव्यों में वर्तना का कारण काल द्रव्य कैसे घटित होता है ?

उत्तर : परिणामी होने से कालद्रव्य दूसरे द्रव्यरूप परिणत हो जाय, ऐसी बात नहीं है, वह न तो स्वयं दूसरे द्रव्य रूप परिणत होता है और न दूसरे द्रव्यों को अपने स्वरूप

अथवा भिन्न द्रव्य स्वरूप परिणमाता है, किन्तु अपने-अपने स्वभाव से ही अपने-अपने योग्य पर्यायों से परिणत होने वाले द्रव्यों के परिणमन में कालद्रव्य उदासीनता से स्वयं बाह्य सहकारी कारण हो जाता है। सूक्ष्म अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेद युक्त अगुरुलघु गुण के द्वारा धर्मादिक द्रव्य षड्गुण हानि-वृद्धि रूप परिणमन करते हैं।

२३०. प्रश्न : समय किसे कहते हैं ?

उत्तर : आकाश के एक प्रदेश पर स्थित एक परमाणु मन्दगति के द्वारा गमन करके दूसरे अनन्तर प्रदेश पर जितने काल में पहुँच जाय, उतने काल को एक समय कहते हैं। सम्पूर्ण द्रव्यों की पर्याय की जघन्य स्थिति एक क्षणमात्र होती है, इसी को भी समय कहते हैं।

२३१. प्रश्न : प्रदेश किसे कहते हैं ?

उत्तर : पुद्गल का एक अविभागी परमाणु लोकाकाश के जितने क्षेत्र में आ जाय, उतने क्षेत्र को प्रदेश कहते हैं।

२३२. प्रश्न : जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक समय सहित आवली प्रमाण काल को जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहते हैं और एक समय कम मुहूर्त को उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहते हैं।

२३३. प्रश्न : व्यंजन पर्याय और अर्थ पर्याय किसे कहते हैं ? इनके कितने भेद हैं?

उत्तर : वचन की विषयभूत स्थूल पर्यायों को **व्यंजन पर्याय** कहते हैं अथवा त्रिकाल सम्बन्धी संस्थान रूप प्रदेशवत्त्व गुण की पर्याय व्यंजन पर्याय है। वचन अगोचर सूक्ष्म पर्यायों को **अर्थपर्याय** कहते हैं अथवा प्रदेशवत्त्व गुण को छोड़कर शेष गुणों की त्रिकाल सम्बन्धी समस्त पर्याय अर्थपर्याय है। इन दोनों के दो-दो भेद हैं। (१) **स्वभावव्यंजनपर्याय** बिना दूसरे निमित्त के जो व्यंजन पर्याय हो-जैसे जीव की सिद्ध पर्याय। और (२) दूसरे निमित्त से जो व्यंजन पर्याय हो, उसे **विभावव्यंजनपर्याय** कहते हैं। जैसे जीव की नरनारकादि पर्याय। (१) बिना दूसरे निमित्त के जो अर्थपर्याय हो, उसे **स्वभाव अर्थपर्याय** कहते हैं जैसे जीव का केवलज्ञान और (२) पर-निमित्त से जो अर्थपर्याय हो, उसे **विभाव अर्थपर्याय** कहते हैं- जैसे जीव के रागद्वेषादिक।

२३४. प्रश्न : छह द्रव्यों की कितनी-कितनी संख्या है ?

उत्तर : जीव द्रव्य अनन्त हैं, उनसे अनन्तगुणे पुद्गल द्रव्य हैं, धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य अखण्ड तथा एक-एक हैं। लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतनी संख्या प्रमाण (असंख्यात) कालद्रव्य हैं।

२३५. प्रश्न : द्रव्यों के प्रदेश चल हैं या अचल हैं या चलाचल हैं ?

उत्तर : सर्व संसारी जीवों के शरीर के मध्य भाग में स्थित गोस्तनाकार आठ प्रदेश अचल ही होते हैं, शेष प्रदेश चल और चलाचल होते हैं क्योंकि संसारी जीव अनवस्थित स्थिति वाले हैं। विग्रहगति में स्थित जीवों के प्रदेश चल रूप ही होते हैं। मुक्त जीवों के प्रदेश अचल एवं अकम्प ही होते हैं क्योंकि ये अवस्थित होते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य के प्रदेश अचल एवं अकम्प ही होते हैं, क्योंकि ये अवस्थित द्रव्य हैं। पुद्गल द्रव्य में परमाणु तथा संख्यात, असंख्यात आदि अणु के जितने स्कन्ध हैं, वे सभी चल हैं, किन्तु एक अन्तिम महास्कन्ध चलाचल है।

२३६. प्रश्न : पुद्गल वर्गणा के कितने भेद हैं ? उनमें से ग्राह्य वर्गणायें कितनी हैं ?

उत्तर : पुद्गल वर्गणा के तेईस भेद हैं- (१) अणु वर्गणा (२) संख्याताणु वर्गणा (३) असंख्याताणु वर्गणा (४) अनन्ताणु वर्गणा (५) आहार वर्गणा (६) अग्राह्य वर्गणा (७) तैजस वर्गणा (८) अग्राह्य वर्गणा (९) भाषा वर्गणा (१०) अग्राह्य वर्गणा (११) मनो वर्गणा (१२) अग्राह्य वर्गणा (१३) कार्मण

वर्गणा (१४) ध्रुव वर्गणा (१५) सान्तर-निरन्तर वर्गणा (१६) शून्य वर्गणा (१७) प्रत्येक शरीर वर्गणा (१८) ध्रुव शून्य वर्गणा (१९) बादर निगोद वर्गणा (२०) शून्य वर्गणा (२१) सूक्ष्मनिगोद वर्गणा (२२) नभो वर्गणा और २३) महास्कन्ध वर्गणा। इन तेईस वर्गणाओं में से आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा और कार्मणवर्गणा ये पाँच ग्राह्य वर्गणायें हैं।

२३७. प्रश्न : पाँच प्रकार की ग्राह्य वर्गणाओं से क्या-क्या रचना होती है ?

उत्तर : **आहारवर्गणा** के द्वारा औदारिक-वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरों की और श्वासोच्छ्वास की रचना होती है। **तैजसवर्गणा** के द्वारा तैजस शरीर की, **भाषावर्गणा** के द्वारा चार प्रकार के वचनों की और **मनोवर्गणा** के द्वारा हृदय स्थान में अष्ट दल कमल के आकार द्रव्य मन की रचना होती है। **कार्मण वर्गणा** के द्वारा आठ प्रकार के कर्म बनते हैं।

२३८. प्रश्न : प्रकारान्तर से पुद्गल द्रव्य के कितने भेद हैं ? उनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर : पुद्गल द्रव्य के छह भेद हैं- (१) जिसका छेदन-भेदन एवं अन्यत्र प्रापण हो सके, उस स्कन्ध को **बादर-बादर** कहते

है जैसे पृथ्वी, काष्ठ, पाषाण आदि। (२) जिसका छेदन-भेदन न हो सके, किन्तु अन्यत्र प्रापण हो सके उस स्कन्ध को **बादर** कहते हैं, जैसे जल, तैल आदि। (३) जिसका छेदन-भेदन एवं अन्यत्र प्रापण कुछ भी न हो सके, ऐसे नेत्र से देखने योग्य स्कन्ध को **बादरसूक्ष्म** कहते हैं, जैसे छाया, आतप, चाँदनी आदि। (४) नेत्र को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों के विषयभूत पुद्गल स्कन्ध को **सूक्ष्म स्थूल** कहते हैं, जैसे शब्द, गन्ध, रस आदि। (५) जिसका किसी इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण न हो सके उस पुद्गल स्कन्ध को **सूक्ष्म** कहते हैं, जैसे कर्म। (६) जो स्कन्ध रूप नहीं है, ऐसे अविभागी पुद्गल परमाणुओं को **सूक्ष्म-सूक्ष्म** कहते हैं।

२३९. प्रश्न : स्कन्ध, स्कन्ध-देश, स्कन्ध-प्रदेश और परमाणु किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो सर्वांश में पूर्ण है, उसे **स्कन्ध** कहते हैं। स्कन्ध के आधे को **स्कन्ध-देश** कहते हैं। **स्कन्ध-देश** के आधे को **स्कन्ध-प्रदेश** कहते हैं। जो अविभागी है, उसे **परमाणु** कहते हैं।

२४०. प्रश्न : अविभागी पुद्गल परमाणु स्कन्ध रूप में किस तरह परिणत होते हैं ?

उत्तर : किसी एक गुण विशेष की स्निग्धत्व और रूक्षत्व ये दो पर्यायें हैं। ये ही बन्ध की कारण हैं। अविभागी प्रतिच्छेदों की (शक्ति के निरंश अंश) अपेक्षा इन पर्यायों के एक से लेकर संख्यात, असंख्यात, अनन्त भेद हैं। बन्ध कम-से-कम दो परमाणुओं में होता है। सो ये दोनों परमाणु स्निग्ध हों अथवा रूक्ष हों अथवा एक स्निग्ध और एक रूक्ष हों तब बन्ध हो सकता है। स्निग्ध व रूक्ष दोनों में ही दो गुण के ऊपर जहाँ दो-दो की वृद्धि होती है वहाँ (दो गुणवाले स्निग्ध या रूक्ष का चार गुणवाले स्निग्ध या रूक्ष के साथ तथा तीन गुणवाले स्निग्ध या रूक्ष का पाँच गुणवाले स्निग्ध या रूक्ष के साथ) बन्ध होता है, किन्तु जघन्य गुणवाले (एक निरंश अंश) परमाणुओं का बन्ध नहीं होता है। अधिक गुणवाला परमाणुहीन गुणवाले को अपने रूप परिणमा लेता है।

२४१. प्रश्न : अस्तिकाय किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर : जो सद्रूप हो उसे अस्ति कहते हैं और जिसके प्रदेश अनेक हों उसे काय कहते हैं। काय के दो भेद हैं- (१)

जो अखण्डप्रदेशी हैं-अखण्डित अनेक प्रदेश रूप हैं, उन द्रव्यों को **मुख्य काय** कहते हैं, जैसे जीव, धर्म, अधर्म, आकाश। (२) जिनके प्रदेश खण्डित (पृथक्-पृथक्) हों, किन्तु स्निग्ध-रूक्ष गुण के निमित्त से परस्पर बन्ध को प्राप्त होकर जिनमें एकत्व हो गया हो अथवा बन्ध होकर एकत्व को प्राप्त होने की जिनमें सम्भावना हो उनको **उपचरित काय** कहते हैं, जैसे पुद्गल। कालद्रव्य में ये दोनों ही बातें नहीं हैं, वह स्वयं अनेकप्रदेशी न होने से मुख्य काय भी नहीं है और स्निग्ध-रूक्ष गुण न होने से बंध को प्राप्त होकर एकत्व की भी उसमें सम्भावना नहीं है, इसलिए कालद्रव्य उपचरित काय भी नहीं है। अतः काल द्रव्य को छोड़कर शेष जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश इन पाँच द्रव्यों को पंचास्तिकाय कहते हैं। काल द्रव्य कायरूप नहीं है, परन्तु अस्ति रूप है।

२४२. प्रश्न : पदार्थ के कितने भेद हैं ? उनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर : मूल में जीव–अजीव दो पदार्थ हैं। दोनों के पुण्य–पाप ये दो–दो भेद होते हैं इसलिए चार पदार्थ हुए। जीव और अजीव के ही आस्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्ष ये पाँच भेद

मिलाने से नौ पदार्थ होते हैं जिसमें ज्ञान-दर्शन रूप चेतना पाई जाये उसे **जीव** कहते हैं। जिसमें चेतना न हो उसे **अजीव** कहते हैं। जो सम्यक्त्व गुण से या व्रत से युक्त हैं उनको **पुण्यजीव** और इससे जो विपरीत हैं उन्हें **पापजीव** कहते हैं। अचेतन जिनबिम्ब आदि आयतनों को **पुण्य अजीव** तथा अचेतन अनायतनों को **पाप अजीव** अथवा शुभ कर्मों को **पुण्य अजीव** और अशुभ कर्मों को **पापअजीव** कहते हैं। अकर्म के कर्मरूप होने को अथवा जीव के जिन परिणामों से कर्म आते हैं, उन मिथ्यात्वादि रूप परिणामों को या मन-वचन-काय के द्वारा होने वाले आत्मप्रदेश परिस्पन्दन को तथा बन्ध के कारणों को **आस्रव** कहते हैं। अनेक पदार्थों में एकत्व बुद्धि के उत्पादक सम्बन्ध विशेष को अथवा आत्मा और कर्म के एकक्षेत्रावगाह रूप सम्बन्ध विशेष को या इसके कारणभूत जीव के परिणामों को **बन्ध** कहते हैं। आस्रव के निरोध को **संवर** कहते हैं। बद्ध कर्मों के एकदेश क्षय को **निर्जरा** कहते हैं। आत्मा से समस्त कर्मों के छूट जाने को **मोक्ष** कहते हैं।

२४३. प्रश्न : मिथ्यात्व गुणस्थान से पाँचवें गुणस्थान तक पृथक्-पृथक् जीवों की संख्या कितनी है ?

उत्तर : **मिथ्यादृष्टि** जीव अनन्तानन्त हैं। **देशसंयत** में तेरह करोड़ मनुष्य और पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण तिर्यंच हैं। **सासादन गुणस्थान** में बावन करोड़ मनुष्य और श्रावकों से असंख्यात गुणे शेष तीन गतियों के जीव हैं। **मिश्र गुणस्थान** में एक सौ चार करोड़ मनुष्य और सासादन गुणस्थान वाले जीवों के प्रमाण से संख्यात गुणे शेष तीन गतियों के जीव हैं। **अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान** में सात सौ करोड़ मनुष्य और **मिश्र गुणस्थान** वाले जीवों के प्रमाण से असंख्यातगुणे शेष तीन गतियों के जीव हैं।

२४४. प्रश्न : प्रमत्तविरत गुणस्थान से अयोगकेवली गुणस्थान पर्यन्त संयत जीवों की पृथक्-पृथक् संख्या कितनी है ?

उत्तर : **प्रमत्त गुणस्थानवर्ती** संयत जीवों का प्रमाण पाँच करोड़ तिरानवे लाख अट्ठानवे हजार दो सौ छह (५,९३,९८,२०६) है। **अप्रमत्त गुणस्थानावर्ती** संयत जीवों का प्रमाण दो करोड़ छियानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन (२,९६,९९,१०३) है। **उपशम श्रेणी वाले** आठवें, नौवें, दसवें, ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती संयत जीवों का प्रमाण २९९

अथवा ३०० अथवा ३०४ है। **क्षपक श्रेणी वाले** आठवें, नौवें, दसवें, बारहवें गुणस्थानवर्ती संयत जीवों का प्रमाण उपशम-श्रेणी वालों से दुगुना अर्थात् ५९८ अथवा ६०० अथवा ६०८ है। **सयोगकेवली जिनों** की संख्या आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो (८,९८,५०२) है। **अयोगकेवली जिनों** की संख्या ५९८ अथवा ६०० अथवा ६०८ है। इस प्रकार समस्त संयत जीवों की संख्या तीन कम नौ करोड़ (८,९९,९९,९९७) है। अर्थात् प्रमत्तविरत गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त सर्व संयमियों का प्रमाण तीन कम नौ करोड़ है (श्रेणीस्थित जीवों की संख्या २९९ मानने से)।

२४५. प्रश्न : निरन्तर आठ समय पर्यन्त उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी मांडने वाले जीवों का प्रमाण कितना है ?

उत्तर : निरन्तर आठ समय पर्यन्त उपशम श्रेणी मांडने वाले जीवों में प्रथम समय में अधिक से अधिक १६ जीव, द्वितीय समय में २४ जीव, तृतीय समय में ३० जीव, चतुर्थ समय में ३६ जीव, पाँचवें समय में ४२ जीव, छटे समय में ४८ जीव, सातवें समय में ५४ जीव और आठवें

समय में ५४ जीव होते हैं। क्षपक श्रेणी में इनसे दुगुने होते हैं अर्थात् प्रथम समय में ३२ जीव, द्वितीय समय में ४८ जीव, तृतीय समय में ६० जीव, चतुर्थ समय में ७२ जीव, पाँचवें समय में ८४ जीव, छटे समय में ९६जीव, सातवें समय में १०८ जीव और आठवें समय में १०८ जीव होते हैं।

२४६. प्रश्न : सम्यक्त्व मार्गणा के कितने भेद हैं ?

उत्तर : सम्यक्त्व मार्गणा के छह भेद हैं- (१) औपशमिक सम्यग्दर्शन, (२) क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन (३) क्षायिक सम्यग्दर्शन, (४) मिश्र, (५) सासादन और (६) मिथ्यात्व।

२४७. प्रश्न : औपशमिक सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ इन पाँच प्रकृतियों के उपशम से और सादि मिथ्यादृष्टि जीव के मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ इन सात प्रकृतियों के उपशम से होने वाले सम्यग्दर्शन को औपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं।

२४८. प्रश्न : औपशमिक सम्यग्दर्शन के कितने भेद हैं ? उनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर : औपशमिक सम्यग्दर्शन के दो भेद हैं- (१) प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन और (२) द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन। प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन ५ अथवा ७ प्रकृतियों के उपशम से मिथ्यादृष्टि जीव को होता है। प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सातवें गुणस्थान तक होता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में किसी का मरण नहीं होता है।

दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों के उपशम के साथ-साथ चार अनन्तानुबन्धी कषायों के विसंयोजन (अनन्तानुबन्धी का अप्रत्याख्यानादि रूप परिणमन होना) से द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन होता है। द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन श्रेणी चढ़ने के सम्मुख जीव के सातवें गुणस्थान में उत्पन्न होता है एवं क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन के पश्चात् उत्पन्न होता है। श्रेणी का आरोहण करके जब जीव ग्यारहवें गुणस्थान से नीचे गिरता है तब छठे, पाँचवें एवं चौथे गुणस्थान में भी पाया जाता है। इस अपेक्षा द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सहित उपशम श्रेणी पर चढ़ने

वाले जीवों का अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम पाये में मरण नहीं होता है, सभी गुणस्थानों में द्वितीयोपशम के काल में मरण होने पर जीव नियम से देवगति में जाता है।

२४९. प्रश्न : क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ इन छह सर्वघाति-प्रकृतियों के वर्तमान काल में उदय आने वाले निषेकों का उदयाभावी क्षय, आगामी काल में उदय आने वाले निषेकों का सदवस्थारूप उपशम तथा सम्यक्त्व प्रकृति नामक देशघातिप्रकृति का उदय रहते हुए जो सम्यग्दर्शन होता है उसे **क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन** कहते हैं। इस सम्यक्त्व में सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से चल, मलिन, अवगाढ़ रूप दोष उत्पन्न होते हैं। यह जीव सम्यक्त्व प्रकृति के उदय का वेदन करता है इसलिए उनके सम्यक्त्व को वेदक सम्यक्त्व भी कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से सप्तम् गुणस्थान पर्यन्त होता है।

जो क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सम्मुख होता हुआ मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और

अनन्तानुबन्धी चतुष्क इन छह प्रकृतियों का क्षय कर चुकता है, मात्र सम्यक्त्व प्रकृति का उदय जब शेष रह जाता है तब वह कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि कहलाता है और इसका काल मात्र अन्तर्मुहूर्त का ही है।

२५०. प्रश्न : क्षायिक सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : सात प्रकृतियों के क्षय से जो सम्यग्दर्शन होता है, उसे **क्षायिक सम्यग्दर्शन** कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन सादि अनन्त है। दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय का प्रारम्भ कर्मभूमिज मनुष्य केवली और श्रुतकेवली के पादमूल में ही करता है किन्तु निष्ठापन चारों गतियों में हो सकता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव चार भव से अधिक संसार में नहीं रहता है। चतुर्थ गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त एवं सिद्ध परमेष्ठी के भी यह सम्यक्त्व पाया जाता है।

२५१. प्रश्न : मिश्र सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से जहाँ ऐसे परिणाम हों जिन्हें न सम्यक्त्व रूप कह सकें और न मिथ्यात्वरूप अर्थात् जिस जीव के तत्त्व के विषय में श्रद्धान और अश्रद्धान रूप परिणाम हों, उसे **मिश्र सम्यक्त्व** कहते हैं। यह मात्र तृतीय गुणस्थान में होता है।

२५२. प्रश्न : सासादन सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में कम-से-कम एक समय और अधिक-से-अधिक छह आवली प्रमाण काल शेष रहने पर अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ में से किसी एक प्रकृति का उदय आ जाने पर जिसने सम्यक्त्व की विराधना कर दी है, किन्तु मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ है उन आसादन रूप परिणामों को **सासादन सम्यक्त्व** कहते हैं। यह अवस्था मात्र द्वितीय गुणस्थान में रहती है। यह जीव नियम से मिथ्यात्व अवस्था को प्राप्त होता है।

२५३. प्रश्न : मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो जीव जिनेन्द्रदेव के कहे हुए आप्त, आगम, पदार्थ का श्रद्धान नहीं करता है परन्तु मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से कुगुरुओं के कहे हुए या बिना कहे हुए भी पदार्थ का विपरीत श्रद्धान करता है उसे **मिथ्यात्व** कहते हैं। यह प्रथम गुणस्थान की अवस्था है।

२५४. प्रश्न : संज्ञी मार्गणा के कितने भेद हैं और उनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर : संज्ञी मार्गणा के दो भेद हैं- (१) संज्ञी और (२) असंज्ञी। नो इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से जो जीव शिक्षा (हितग्रहण, अहितत्याग-रूप शिक्षा), क्रिया (इच्छापूर्वक

हाथ-पैर चलाने की), उपदेश और आलाप (श्लोक आदि के पाठ) को मन के अवलम्बन से ग्रहण करता है उसे **संज्ञी** कहते हैं। जिन जीवों में लब्धि या उपयोग रूप मन नहीं पाया जाता है, उन्हें **असंज्ञी** कहते हैं।

एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के जीव नियम से असंज्ञी ही होते हैं। पंचेन्द्रिय संज्ञी-असंज्ञी दोनों प्रकार के होते हैं। नरक, मनुष्य और देवगति में सब जीव संज्ञी ही होते हैं, परन्तु तिर्यंच गति में संज्ञी-असंज्ञी दोनों होते हैं। असंज्ञी जीव के मात्र मिथ्यात्व गुणस्थान होता है और संज्ञी जीव के मिथ्यात्व से लेकर बारह गुणस्थान तक होते है। तेरहवें आदि गुणस्थानवर्ती जीव न संज्ञी हैं, न असंज्ञी हैं, किन्तु उभय व्यपदेश से रहित हैं।

२५५. प्रश्न : आहारक मार्गणा के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : आहारक मार्गणा के दो भेद हैं- (१) आहारक और (२) अनाहारक।

२५६. प्रश्न : आहारक किसे कहते हैं ?

उत्तर : औदारिकादि तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल वर्गणा को आहार कहते हैं। उसे जो ग्रहण करता है, वह आहारक कहलाता है।

२५७. प्रश्न : अनाहारक किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो उपर्युक्त आहार को ग्रहण नहीं करता है उसे अनाहारक कहते हैं।

२५८. प्रश्न : आहारक-अनाहारक अवस्था किन-किन गुणस्थानों में होती है ?

उत्तर : विग्रहगति को प्राप्त होने वाले चारों गति सम्बन्धी जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करने वाले सयोगकेवली, अयोगकेवली और समस्त सिद्ध जीव अनाहारक होते हैं। अर्थात् पहले, दूसरे व चौथे में, समुद्घात की अपेक्षा तेरहवें में और चौदहवें गुणस्थान में अनाहारक अवस्था होती है तथा प्रारम्भ से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक आहारक अवस्था होती है। आहारक का उत्कृष्ट काल सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण (इतने काल पर्यन्त जीव ऋजुगति से उत्पन्न होता रहता है।) और जघन्य काल तीन समय कम श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण है। अनाहारक का उत्कृष्ट काल तीन समय और जघन्य काल एक समय है।

२५९. प्रश्न : उपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर : जीव का जो भाव वस्तु को ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त होता है उसे उपयोग कहते हैं।

२६०. प्रश्न : उपयोग के कितने भेद हैं और उनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर : उपयोग के दो भेद हैं- (१) साकार उपयोग और (२) अनाकार उपयोग। **साकार उपयोग** के आठ भेद हैं- पाँच प्रकार का सम्यग्ज्ञान और तीन प्रकार का अज्ञान **अनाकार उपयोग** के चार भेद हैं- (१) चक्षुदर्शन (२) अचक्षुदर्शन, (३) अवधिदर्शन और (४) केवलदर्शन। मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इनके द्वारा अपने-अपने विषय का अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त जो विशेष ज्ञान होता है उसे **साकार उपयोग** कहते हैं। एक वस्तु के ग्रहण रूप चेतना का यह परिणमन छद्मस्थ जीव के अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक ही रह सकता है। इन्द्रिय, मन और अवधि के द्वारा अन्तर्मुहूर्त काल तक पदार्थों का जो सामान्य रूप से ग्रहण होता है उसको **निराकार उपयोग** कहते हैं। निराकार उपयोग **छद्मस्थ जीव** के अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त तक होता है।

२६१. प्रश्न : किस मार्गणा में कौन-सा सम्यग्दर्शन होता है ?

उत्तर : **गतिमार्गणा** की अपेक्षा नरकगति में प्रथम पृथ्वीस्थ नारकियों की अपर्याप्त अवस्था में क्षायिक और कृतकृत्यवेदक की अपेक्षा

क्षायोपशमिक तथा पर्याप्त अवस्था में औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं। द्वितीयादि पृथ्वीस्थ नारकियों की अपर्याप्त अवस्था मे एक भी सम्यग्दर्शन नहीं होता है और पर्याप्त अवस्था मे औपशमिक तथा क्षायोपशमिक दो सम्यग्दर्शन होते है। तिर्यंचगति मे भोगभूमिज तिर्यंच के अपर्याप्त अवस्था में क्षायिक और कृतकृत्यवेदक की अपेक्षा क्षायोपशमिक दो सम्यग्दर्शन होते है तथा पर्याप्त अवस्था मे तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं। मनुष्यगति मे मनुष्य के अपर्याप्त अवस्था मे क्षायिक और कृतकृत्यवेदक की अपेक्षा क्षायोपशमिक–दो सम्यग्दर्शन तथा पर्याप्त अवस्था मे तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं। देवगति मे भवनत्रिक देव और कल्पवासिनी देवियो के अपर्याप्त अवस्था में एक भी सम्यग्दर्शन नहीं होता है, किन्तु पर्याप्त अवस्था मे औपशमिक और क्षयोपशमिक दो सम्यक्त्व होते हैं। वैमानिक देवों मे अपर्याप्त और पर्याप्त दोनो ही अवस्थाओं मे तीनों प्रकार के सम्यग्दर्शन होते हैं।

इन्द्रिय मार्गणा की अपेक्षा एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीवों के एक भी सम्यग्दर्शन नहीं होता परन्तु पंचेन्द्रिय जीवों के तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं। **काय मार्गणा** की अपेक्षा पाँच स्थावर जीवों के एक भी सम्यक्त्व नहीं होता है और त्रस जीवों के तीनों सम्यक्त्व होते हैं।

योग मार्गणा की अपेक्षा सयोग जीवों के तीनों सम्यक्त्व होते हैं और योगरहित जीवों के एक क्षायिक सम्यग्दर्शन ही होता है। **वेद मार्गणा** की अपेक्षा सवेद जीवों के तीनों सम्यक्त्व और अवेद जीवों के औपशमिक (द्वितीयोपशम) तथा क्षायिक दो सम्यक्त्व होते हैं। **कषाय मार्गणा** की अपेक्षा सकषाय जीवों के तीनों सम्यक्त्व और अकषाय जीवों के औपशमिक (द्वितीयोपशम) तथा क्षायिक दो सम्यक्त्व होते हैं।

ज्ञानमार्गणा की अपेक्षा मति-श्रुत-अवधि और मनःपर्यय ज्ञानियों के तीनों सम्यक्त्व तथा केवलज्ञानियों के एक क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है। **संयममार्गणा** की अपेक्षा सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि इन तीन संयमों के धारक जीवों के तीनों (परिहार विशुद्धि वाले के उपशम सम्यक्त्व-प्रथमोपशम को छोड़कर) सम्यक्त्व, सूक्ष्मसाम्पराय और औपशमिक-यथाख्यात वालों के औपशमिक (द्वितीयोपशम) और क्षायिक सम्यक्त्व होता है तथा क्षायिक यथाख्यात वालों के एक क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है।

दर्शनमार्गणा की अपेक्षा चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन वालों के तीनों सम्यक्त्व तथा केवल दर्शन वालों के एक क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है। **लेश्यामार्गणा** की अपेक्षा सलेश्य जीवों के तीनों सम्यक्त्व और अलेश्य

जीवों के मात्र क्षायिक सम्यक्त्व होता है। **भव्यत्व मार्गणा** की अपेक्षा भव्य जीव के तीनों सम्यक्त्व और अभव्य जीव के एक भी सम्यक्त्व नहीं होता है। **सम्यक्त्व मार्गणा** की अपेक्षा जहाँ जो सम्यग्दर्शन होता है वहाँ वही होता है। सामान्य से चतुर्थ गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं। आठवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक औपशमिक (द्वितीयोपशम) और क्षायिक सम्यक्त्व तथा उसके आगे केवल क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है।

संज्ञीमार्गणा की अपेक्षा संज्ञी जीव के तीनों सम्यक्त्व होते हैं और असंज्ञी जीव के एक भी सम्यक्त्व नहीं होता है। **आहारकमार्गणा** की अपेक्षा आहारक और चतुर्थ गुणस्थानवर्ती आहारक-अनाहारक जीवों के तीनों सम्यक्त्व तथा तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती अनाहारक जीवों के केवल क्षायिक सम्यक्त्व होता है।

२६२. प्रश्न : किस मार्गणा में कितने और कौन-कौन से गुणस्थान होते हैं ?

उत्तर : गतिमार्गणा की अपेक्षा नरकगति और देवगति में प्रारम्भ के चार गुणस्थान होते हैं। तिर्यंचगति में प्रारम्भ के पाँच गुणस्थान और मनुष्यगति में चौदह गुणस्थान होते हैं।

भोगभूमिज मनुष्य और तिर्यंचों में प्रारम्भ के चार गुणस्थान होते हैं। नरकगति की अपर्याप्त (निर्वृत्यपर्याप्त) अवस्था मे सासादन गुणस्थान नहीं होता है। किसी भी गति की निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में मिश्र गुणस्थान नहीं होता है। मनुष्य और तिर्यंचों की लब्ध्यपर्याप्त अवस्था में मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है।

इन्द्रियमार्गणा की अपेक्षा एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों के एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के चौदह गुणस्थान होते हैं।

कायमार्गणा की अपेक्षा पाँच स्थावरकायिक जीवों में एक मिथ्यात्व गुणस्थान होता है तथा त्रसकायिक जीवों में सभी चौदह गुणस्थान होते हैं।

योगमार्गणा की अपेक्षा योग सहित जीवों में तेरह गुणस्थान और योग रहित जीवों में एक चौदहवाँ गुणस्थान होता है।

वेदमार्गणा की अपेक्षा वेद सहित जीवों में प्रारम्भ के नौ गुणस्थान और वेदरहित जीवों में नवम् गुणस्थान के उत्तरार्ध से चौदहवें तक पाँच गुणस्थान होते हैं।

कषायमार्गणा की अपेक्षा क्रोध, मान और माया कषाय में प्रारम्भ के नौ गुणस्थान, लोभ कषाय में प्रारम्भ के दस

गुणस्थान तथा कषाय के अभाव में ग्यारहवें से चौदहवें तक चार गुणस्थान होते हैं।

ज्ञानमार्गणा की अपेक्षा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान में चतुर्थ से बारहवें तक नौ गुणस्थान, मनःपर्ययज्ञान में छठे से बारहवें तक सात गुणस्थान और केवलज्ञान में अन्त के दो गुणस्थान होते हैं। कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान में प्रारम्भ के तीन गुणस्थान होते हैं।

संयममार्गणा की अपेक्षा सामायिक और छेदोपस्थापना संयम में छठे से नौवें तक चार गुणस्थान, परिहारविशुद्धि संयम में छठा और सातवाँ दो गुणस्थान, सूक्ष्मसाम्पराय संयम में दसवां गुणस्थान, यथाख्यात संयम में ग्यारहवें से चौदहवें तक चार गुणस्थान, संयमासंयम में पाँचवां गुणास्थान और असंयम में प्रारम्भ के चार गुणस्थान होते हैं।

दर्शनमार्गणा की अपेक्षा चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन में प्रारम्भ से बारहवें तक बारह गुणस्थान, अवधिदर्शन में चौथे से बारहवें तक नौ गुणस्थान और केवलदर्शन में अन्त के दो गुणस्थान होते हैं।

लेश्यामार्गणा की अपेक्षा कृष्ण, नील और कापोत लेश्या में प्रारंभ के चार गुणस्थान, पीत और पद्मलेश्या में प्रारंभ के सात गुणस्थान और शुक्ललेश्या में प्रारंभ के

तेरह गुणस्थान होते हैं। लेश्यारहित जीव के एक चौदहवाँ गुणस्थान ही होता है।

भव्यत्वमार्गणा की अपेक्षा भव्य जीव के सभी गुणस्थान होते हैं और अभव्य जीव के एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है।

सम्यक्त्वमार्गणा की अपेक्षा प्रथमोपशम सम्यक्त्व तथा क्षयोपशम सम्यक्त्व में चतुर्थ से सप्तम् तक चार गुणस्थान, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में चतुर्थ से ग्यारहवें तक आठ गुणस्थान और क्षायिक सम्यक्त्व में चतुर्थ से चौदहवें तक ग्यारह गुणस्थान होते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व गुणस्थानातीत सिद्ध परमेष्ठी के भी होता है।

संज्ञीमार्गणा की अपेक्षा संज्ञी जीवों में प्रारम्भ के बारह गुणस्थान, असंज्ञी जीवों में एक मिथ्यात्व गुणस्थान[1] और संज्ञी-असंज्ञी के व्यवहार से रहित केवली के अन्त के दो गुणस्थान होते हैं।

---

१. इतनी विशेषता है कि अनेक आचार्यों ने असंज्ञी जीवों में भी निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में सासादन गुणस्थान माना है। इस प्रकार उन्होंने असंज्ञी जीवों में दो गुणस्थान माने हैं। गो.क. ११३, पंचसंग्रह पृ. ७५ (अमितगति आचार्य) आदि। इस प्रकार असंज्ञी जीवों में सासादन गुणस्थान के सद्भाव के विषय में दो मत पाये जाते हैं।

आहारमार्गणा की अपेक्षा आहारक जीव में प्रारम्भ के तेरह गुणस्थान और अनाहारक जीव में प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थान तथा समुद्घात की अपेक्षा तेरहवाँ और चौदहवाँ इस प्रकार पाँच गुणस्थान होते हैं।

सिद्ध परमेष्ठी में सिद्धगति, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व और अनाहारक मार्गणाओं को छोड़कर शेष मार्गणाओं का अभाव होता है

करणानुयोग

चतुर्गति –युगावर्त-लोकालोक-विभागविद्।
हृदि प्रणेयः करणानुयोगः करणातिगैः।।
अधो मध्योर्ध्वलोकानां, संख्यानामादिवर्णनम्।
क्रियते यत्र स ज्ञेयो, योगो हि करणात्मकः।।

जो चार गतियों, युगों का परिवर्तन तथा लोकालोक के विभाग को जानने वाला है, उसे इन्द्रियातील पुरुषों को करणानुयोग जानना चाहिए। अधो, मध्य और ऊर्ध्व लोक की संख्या तथा नामादि का वर्णन जिसमें किया जाता है, उसे करणानुयोग जानो।

यः कालभेदं गुणधामभेदं,
लोकस्य भेदं वसुधाधराणाम्।
संस्थानभेदं बहुकर्मभेदं,
भावस्य भेदं च नृणां ब्रवीति।।
प्राणायमानो जिनवाङ्मयस्य,
ध्यानैकपात्रं विबुधेश्वराणाम्।
प्रियो मुनीनां तपसा युतानां,
स कथ्यते वै करणानुयोगः।।

जो उत्सर्पिणी अवसर्पिणी आदि काल के भेदों को, गुणस्थान के भेदों को, लोक के भेदों को, पर्वतों के आकार-भेद को, कर्मों

के भेद को तथा मनुष्यों के भावों के भेद को कहता है, जो जिनागम के प्राणों के समान है, विद्वानों के ध्यान का पात्र है तथा जो तपस्वी मुनियों के लिये प्रिय है, वह करणानुयोग कहलाता है।

जिसमें लोक, जगत्प्रतर, जगच्छ्रेणी, द्वीप, समुद्र, पर्वत आदि के विस्तार को निकालने के लिए करणसूत्रों-गणितसूत्रों का कथन होता है, उसे करणानुयोग कहते हैं। इसी प्रकार जिसमें गुणस्थान, मार्गणा, जीवसमास आदि के आश्रयभूत करणों-जीव के परिणाम विशेषों का वर्णन होता है, उसे भी करणानुयोग कहते हैं। कर्मों के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम से सम्बन्ध रखने वाली चर्चा भी इसी अनुयोग में होती है।

ग्रन्थ : तिलोयपण्णत्ती, त्रिलोकसार, जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, षट्खण्डागम, धवलाटीका, जयधवला टीका, महाधवला, कसायपाहुडसुत्त, सिद्धान्त-सारसंग्रह, राजवार्तिक, जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति, गणितसारसंग्रह, लोकविभाग, लब्धिसार-क्षपणासार आदि।

।। समाप्त ।।